



# पण्डित के दुर्गम पथ पर

क्षितीश वेदालंकार



# पण्डित के दुर्गम पथ पर

क्षितीश वेदालंकार

1950

सिस्टम्स विज्ञान

[systemsvision@gmail.com](mailto:systemsvision@gmail.com)

## पूर्व कथन

पण्डिम शिखर सिक्किम राज्य में स्थित है। समुद्रतल से इसकी ऊंचाई 21,952 फीट है यानि दुनिया के उच्चतम शिखर ऐवरेस्ट से केवल 7077 फीट कम, जिस पर प्रथम सफल चढ़ाई 29 मई 1953 को हुई थी।

सन् 1950 में हमारे पिताश्री क्षितीश वेदालंकार ने अपने चन्द साथियों के साथ पण्डिम शिखर पर चढ़ने का प्रयास किया था। इस पुस्तिका में उस यात्रा का वृत्तान्त है जो उन्होंने सिलेसिलेवार लिखा था और वह 'वीर अर्जुन साप्ताहिक' और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में 1951 में धारावाहिक छपा था।

पिताजी और उनके साथियों ने बिना किसी संस्था का आश्रय लिए निजी तौर पर यह यात्रा की थी। उनसे पहले इस शिखर पर चढ़ने की पहल किसी और भारतीय अथवा गैर भारतीय दल ने नहीं की थी। उस समय वे लगभग 34 वर्ष के नवयुवक थे और एक पुत्री और पुत्र के पिता बन चुके थे।

इसके अतिरिक्त भी पिताजी ने कई कठिन यात्राएं कीं। कश्मीर से कन्याकुमारी तथा द्वारका से इम्फाल तक के भारत दर्शन और उत्तराखंड के चारों धाम भी उन्होंने किए थे। कैलाश मानसरोवर की यात्रा तो वे सन् 1937 में ही कर चुके थे। इन यात्राओं के वर्णन लिखने के लिए उन्होंने अपना उपनाम ही 'चक्रचरण' रख रखा था। 1961 में उन्होंने पांगी (हिमालय प्रदेश) की यात्रा की जहां वे भयंकर हिमपात में फंस गए थे। यातायात और संचार माध्यम पूरी तरह ध्वस्त हो गये थे। मां के पास अनेक दिनों तक कोई सूचना नहीं थी कि वे कहां हैं— उन दिनों मोबाइल को तो छोड़ो, साधारण टेलीफोन लाइनें भी सुस्त चलती थीं— फिर हमारे घर कौन सा टेलीफोन लगा हुआ था। मां ने अपनी धुकुर-पुकुर और

चिन्ता की जरा भी भनक हम बच्चों को नहीं लगने दी थी। आज भी उन दिनों घर के माहौल को याद करके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। और फिर, वे एक दिन अचानक घर लौट आए। और तब हमने पाया कि वे अपनी अधिकांश श्रवण-शक्ति वहीं छोड़ आए हैं, जो वापस कभी नहीं लौटी।

आज की पीढ़ी के लिए इस यात्रा वृत्तान्त में कई बार चौंकाने वाले विवरण मिलेंगे। कुछ यूनिट्स जो उस समय प्रचलित थे पर आज नहीं, यहां दिए जा रहे हैं!

1 मन = 40 सेर = 37.325 किलोग्राम

1 मील = 8 फर्लांग = 5280 फीट = 1.61 किलोमीटर

1 फीट = 30.48 सेंटीमीटर

इलायची का भाव (50 रुपये मन = 1 रुपये 44 पैसे किलो) वही चने का भी (सिकिक्म में)

चंवर गाय का देसी घी (3.5 रुपये सेर = 4 रुपये किलो) वही जो तेल का भी

धान का भाव (16 रुपये मन = 46 पैसे किलो)

ये भाव इसी यात्रा वृत्तान्त में से लिए हैं। 60-65 वर्षों में मंहगाई ने कैसा विकराल रूप दिखाया है!

पिताश्री के इस प्रेरक यात्रा-वृत्तान्त को पुस्तकाकार प्रकाशित करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। उनके उद्दाम साहस, यायावरी जीवट और हिमालय प्रेम को स्मरण कर हमें जहां पुलकन होती है, वहीं आत्म-गौरव भी। उनकी पुण्य स्मृति के साथ यह पुस्तिका उन्हीं के चरणों में सादर समर्पित है।

*विश्ववारा, विनयादित्य, शीलादित्य, स्नेह रश्मि*

**क्या** कभी जीवन में हिमालय के दर्शन का अवसर मिला है? नहीं! तो वह अभागा है।

यदि हिमालय के दर्शन का सौभाग्य एक बार भी प्राप्त किया है तो क्या पुनः उसके दर्शन की उत्कण्ठा मन में नहीं हुई? यदि सचमुच ही नहीं हुई तो समझना चाहिए कि उस मनुष्य की रसबोध की वृत्ति समाप्त हो गई। प्रकृति में कितना रस है इसका सम्यक् ज्ञान हिमालय के अंक को छोड़कर और कहां हो सकता है। हिमालय तो रसों का जन्मदाता— कितने सरस सलिल स्रोत और स्रोतस्विनियां उसके अंक में क्रीड़ा करती हैं।

जब भी कभी हिमालय के दर्शन का अवसर मिला है तभी उसकी कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति का जादू मेरे ऊपर छा गया है कि पुनः पुनः उसके दर्शन की अभिलाषा मन में जाग उठती है। सोते-जागते, उठते-बैठते उसी के वन, पर्वत, नदी और नाले दिमाग में चक्कर काटते रहते हैं।

भारत के उत्तर में हिममण्डित हिमालय की 1800 मील लम्बी श्रृंखला एक प्रहरी की तरह खड़ी है। इस गिरि श्रृंखला में कंचनजंघा का विशेष महत्व है। अपने अप्रतिम सौन्दर्य के लिए यह विश्वविदित है। इसी कंचनजंघा श्रृंखला में 22,000 फीट ऊंचा पण्डिम-शिखर है जो चिरकाल से हिमालय-प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। किन्तु इसकी दुरारोहिता के कारण आज तक कोई भी यात्री-दल इसके शिखर तक नहीं पहुंच सका है।

इस बार जब कंचन शृंग-श्रृंखला स्थित पण्डिम हिल के अभियान की पत्रों में चर्चा चली तो फिर प्रसुप्त उमंग जाग उठी और न जाने किसी अदृश्य शक्ति से खिंचा हुआ मैं अभियान दल में सम्मिलित हो गया। शायद यह मनोहर भाई के उत्साह का ही परिणाम था कि धीरे-धीरे समस्त दल का नेतृत्व भी उनके कन्धों पर आ पड़ा।

सितम्बर, 1950 में पहली बार चार भारतीय युवकों के एक दल ने पण्डिम शिखर के अभियान का प्रयत्न किया। इस पुस्तिका में उसी अभियान का रोचक वृत्तांत उपस्थित है।

# पण्डित के दुर्गम पथ पर

## यात्रा का आरम्भ

संसार का सबसे ऊँचा पर्वत – गिरिराज हिमालय – उत्तर दिशा में भारत का महान और अजेय प्रहरी है। भारत माता के मस्तक पर हिम-किरीट जैसी शोभा देने वाला यह ‘अम्बर चुम्बित भाल हिमाचल’ कवियों की कल्पना का मूर्तरूप है। हमारी धरती को शस्यश्यामला बनाने वाली नदियों का यह उद्गम-स्थल, यक्ष-किन्नर-गन्धर्वों की यह लीलाभूमि, भारतीय काव्यों का यह देव और स्वर्गलोक देश-विदेश के यात्रियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। इसकी विभिन्न ऊँचाइयों तक पहुँचने के लिए प्रायः प्रतिवर्ष साहसी यात्री आते हैं और उनके वीरतापूर्ण अभियानों के रोमांचकारी वृत्तांत समाचार पत्रों में छपते हैं। ये समाचार मेरे हृदय में सदैव एक स्फूर्तिपूर्ण प्रेरणा का संचार करते रहे हैं और मैं स्वयं किसी उत्तुंग पर्वत-शिखर पर अभियान करने का स्वप्न देखता रहा हूँ।

इसी वर्ष अगस्त के मध्य में मैंने यह समाचार पढ़ा कि भारतीय युवकों का एक दल पण्डित शिखर का आरोहण करने के लिए जा रहा है। मैंने और मेरे मित्र श्री मनोहर विद्यालंकार ने भी उसमें शामिल होने का निश्चय किया। हम दोनों पश्चिमी तिब्बत में स्थित कैलास और मानसरोवर की यात्रा में साथी थे। मनोहर अकेले गंगोत्री से ऊपर गोमुख और पिण्डारी ग्लेशियर तक हो आए थे। मैं काश्मीर में कोसर पीर को पार करके आया था। हमारा एक और साथी था – विद्यारत्न। वह एकाकी व्यास नदी के उद्गम ‘रटांग ला’ के ग्लेशियर तक होकर आया था। हम तीनों गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक इस प्रकार पृथक्-पृथक् रूप से हिममण्डित हिमालय के आरोहण के, अपनी समझ से, अभ्यस्त थे। चौथा व्यक्ति जगदीश नारायण अग्निहोत्री अत्यन्त उत्साह-सम्पन्न और यात्रा के लिए मूल रूप से प्रेरणा देने वाला था। परस्पर मिलकर

हमने आवश्यक सामान की सूची तैयार की और 6 सितम्बर 1950 की रात को दिल्ली स्टेशन पर गाड़ी में जा बैठे। उस समय कितने ही मित्र, हितैषी और कुटुम्बी हमें विदा देने आए।

उस छोटे-से डिब्बे में उठते-बैठते, सोते-जागते और यात्रा सम्बन्धी समस्याओं पर विचार करते तथा दार्जिलिंग से परे की हिम श्रृंखलाओं के काल्पनिक चित्र देखते हुए हम अगले दिन प्रातः लखनऊ पहुंचे।

उसी दिन दोपहर को 1 बजे हम लखनऊ से अवधतिरहुत रेलवे की छोटी लाइन से कटिहार के लिए रवाना हुए। गाड़ी के चलते ही मूसलाधार वर्षा हुई जिससे रास्ते की गर्मी से छुटकारा मिला। रात को गाड़ी में हम इस तरह बेखबर सोए कि पता नहीं लगा कि कब नेहरू तथा टण्डन का उत्तरप्रदेश गुजर गया और राष्ट्रपति का बिहार शुरू हो गया। सवेरे जब आंख खुली तो सोनपुर के विशाल प्लेटफार्म पर गाड़ी खड़ी थी।

गाड़ी फिर अपनी चाल से आगे बढ़ी। 10 और 11 बजे के बाद गाड़ी जिस प्रदेश में से होकर गुजरी उसमें जहां तक दृष्टि जाती थी वहां तक लाइन के दोनों ओर पानी ही पानी दिखाई देता था। दूर-दूर तक पानी का एक समुद्र सा लहरा रहा था और दोनों ओर के खम्भे, टेलीफोन के तार, वृक्ष आदि सब जलमग्न थे। मीलों तक बस्ती के दर्शन नहीं होते थे। कहीं किसी ऊंचे पेड़ का थोड़ा-सा हिस्सा पानी से ऊपर चमकता तो उस अपार जल-विस्तार में वह एक टापू जैसा लगता। कोसी और घाघरा नदी की बाढ़ ने बिहार और उत्तरप्रदेश के इस सीमावर्ती प्रदेश में इतना अन्धेर मचाया होगा इसकी बिना देखे कल्पना नहीं की जा सकती थी।

3 बजे दोपहर को गाड़ी कटिहार पहुंची। मनहारी घाट से आने वाली और सिलीगुड़ी जाने वाली गाड़ी तैयार मिल गई। भीड़-भड़क्के में किसी तरह गाड़ी में चढ़े। यहां से आसाम रेलवे शुरू हो गई।

पाकिस्तान बन जाने के कारण बंगाल और आसाम-खासकर आसाम-इस ऊटपटांग ढंग से कट गए हैं कि कहीं एक गांव



हिन्दुस्तान में है तो दूसरा पाकिस्तान में और तीसरा फिर हिन्दुस्तान में। इसी प्रकार कहीं स्टेशन पाकिस्तान में है तो रेलवे लाइन हिन्दुस्तान में। कहीं इससे ठीक उलटा है। कहीं ऐसा भी है कि स्टेशन और रेलवे लाइन तो हिन्दुस्तान में है किन्तु रेलवे कर्मचारियों के क्वार्टर पाकिस्तान में चले गए हैं। इस अव्यवस्था के परिणामस्वरूप कलकत्ते से सिलीगुड़ी का सीधा सम्बन्ध भंग हो गया है। वहां अब चक्कर काट के जाना पड़ता है।

जिस गाड़ी में हम बैठे उसमें न बिजली थी, न पानी। स्टेशनों पर भी रोशनी का अभाव था। कहीं किसी बड़े स्टेशन पर एकाध लैम्प दिखाई दे जाता था। वर्षा के कारण गाड़ी रातभर चूती गई। यह सब नई आसाम रेलवे का प्रताप है। लेकिन चूंकि अभी-अभी शुरू हुई है इसलिए क्षम्य है। स्टेशन अभी बन रहे हैं। बहुत से स्टेशनों पर अभी बुकिंग शुरू भी नहीं हुआ है।

सिलीगुड़ी पहुंचने पर आसाम रेलवे के नयेपन का करिश्मा दिखाई दिया। दो-तीन प्लेटफार्म और उन पर कुलियों की भीड़ के सिवाय स्टेशन का कहीं और कोई लक्षण नजर नहीं आता। थोड़ी दूर पर सामने एक विशाल इमारत बनती दृष्टिगोचर हुई। पता लगा कि यही सिलीगुड़ी का स्टेशन है जो अभी बन रहा है। पूर्ण होने पर यह इमारत निस्सन्देह भव्य होगी, किन्तु इस समय तो कामचलाऊ टिकटघर भी एक छोटी-सी झोंपड़ी के अन्दर है।

## रेलगाड़ी का बच्चा

रिमझिम वर्षा। गुलाबी सर्दी। लगातार 57 घंटे के सफर के बाद जब गाड़ी से उतरे तो लगा कि टांगें जकड़ गई हैं। रेलगाड़ी से वैराग्य हो गया।

सिलीगुड़ी से चलने वाली दार्जिलिंग की छोटी-सी रेल दर्शनीय है और अपनी प्रत्येक गतिविधि से कम-से-कम एक बार तो यात्री को अपनी ओर आकृष्ट अवश्य करती है। लगभग फुटभर चौड़ी पटरी, छोटे-छोटे दो या तीन डिब्बे, और एक इंजन आगे, एक पीछे। चलती

है छक्छक् करती जैसे कोई पैदल आदमी चल रहा हो – घंटे भर में मुश्किल से 10 मील। जब चढ़ाई पर चढ़ती है तो पिछले इंजन के छप्पे पर बाहर बैठा हुआ आदमी पटरी पर लगातार रेत डालता चलता है कि गाड़ी कहीं पीछे न फिसल जाए। दूर से देखने पर ऐसी लगती है जैसे किसी बच्चे ने अपनी रेलगाड़ी चाबी भरकर पटरी पर छोड़ दी और वह रेंगती भागी जा रही है। परन्तु रेल से इतना तीव्र वैराग्य हो गया था कि इस मनोरंजन की सामग्री को छोड़कर मोटर से ही दार्जिलिंग चलना तय हुआ।

दार्जिलिंग सिलीगुड़ी से 54 मील है। मोटर चली। लगभग 14 मील तक सड़क समतल है। मोटर सर्राटे भरती चली गई। सड़क के साथ-साथ ही रेलवेलाइन भी चल रही थी, कभी दाएं, कभी बाएं। धीरे-धीरे सड़क चढ़ती चली गई। ऊपर पहुंचकर दूर नीचे दो रेलगाड़ियों को अलग-अलग समानान्तर दिशा में चलते हुए देखने पर मोटर के यात्रियों को ऐसा लगा जैसे दो गिजाइयां रेंग रही हों। सड़क और ऊंचाई पर पहुंच गई। सड़क के किनारे-किनारे धमी का घना सुन्दर जंगल शुरू हो गया। सड़क बार-बार मुड़ने लगी – मोटर-मानिनी को भी बार-बार कमर लचकानी पड़ी। धीरे-धीरे चक्कर काटती, खांसती-खखारती और बादलों के समूह को भेदती मोटर पहुंची गौरीबाड़ा। हम समझे कि मंजिल आ गई। हल्की-हल्की फुहार और रूई के गल्लों जैसे बादलों को सिर पर छत की तरह ओढ़े हम जब मोटर से उतरे तो पता लगा कि अभी दार्जिलिंग का यहां से एक-तिहाई पथ और है। फिर रुकने का कारण? पिछले दिनों इस प्रदेश में जो भयंकर 'भूमि-स्खलन' हुआ था, उसके परिणामस्वरूप सड़क टूट गई थी और लगभग दो मील तक का मार्ग रुद्ध हो गया था। न आगे रेल जाती थी, न मोटर। एक सद्योनिर्मित पथ से पहाड़ के ऊपर से होकर पैदल जाना था। उधर से फिर दूसरी मोटर मिलने वाली थी।

सामान उठाने के लिए कुलियों की भीड़ लग गई। कुली-स्त्री और पुरुष दोनों, बल्कि स्त्रियां अधिक और पुरुष कम। स्त्रियां भी अधिकांश षोडशियां – अपनी आकृति और वेष-विन्यास से स्वच्छ एवं आकर्षक।

जब ये ही सुकुमारियां एक-एक मन भार अपनी पीठ पर उठाकर हमारे सामने ही पहाड़ पर चढ़ने लगीं तो हम अवाक् रह गए।

लगातार बैठे-बैठे धैर्य की सीमा पर पहुंचकर पांव विद्रोह की तैयारी कर रहे थे, उन्हें भी अब थोड़ा चलने का अवसर मिला। चढ़ाई अच्छी खासी थी। ठण्ड बढ़ गई थी। हल्की-हल्की फुहार में ही जब हम चढ़ाई को पार करके दूसरी ओर पहुंचे तो सनोदा स्टेशन आया। यहां से दूसरी मोटर मिलने वाली थी। कुलियों की पीठ पर से सामान उतरवाया गया। कुली बालाओं के केशों पर फुहार के और मुख पर भार तथा श्रम के स्वेद बिंदु मोती जैसे झलक आए थे। ये चोरबाजारी के मोती नहीं, गाढ़ी कमाई के मोती थे।

दार्जिलिंग से पहले कुर्सियांग अच्छी बस्ती ही नहीं अपटूडेट शहर है। वह साढ़े चार हजार फीट की ऊंचाई पर है। चाय के बाग दूर-दूर तक फैले हुए हैं और वहां खासी चहल-पहल है।

गुम की चढ़ाई पर चढ़ते-चढ़ते मोटर को बार-बार सांस लेना पड़ा। यह इस मार्ग का सबसे ऊंचा स्थान है। यहीं से टाइगर पर्वत को रास्ता जाता है। टाइगर पर्वत यहां से 6 मील दूर है। संसार भर के यात्री इस 10 हजार फीट ऊंचे पर्वत-शिखर से कंचनजंघा की अद्भुत हिमराशि का अनुपम सौन्दर्य देखने आते हैं।

गुम की ऊंचाई पर से जब मोटर चक्कर खाती हुई गुजर रही थी तो शीत के आधिक्य और भावी यात्रा की कल्पना ने आंखों में कुछ ऐसी खुमारी भर दी कि मन स्वप्न-सृष्टि में विचरण करने लगा और इन्द्रियों का बाह्य वस्तु-बोध जाता रहा। न जाने यह स्थिति कब तक रही कि थोड़ी देर में ही मोटर के रुकने का झटका लगा और ड्राइवर ने कहा- “दार्जिलिंग आ गया!”

आंख खुलीं। सामने देखा- ‘पहाड़ों की रानी’ अपना समस्त श्रृंगार किए खड़ी थी।

# पण्डित की दुर्गम यात्रा

## भारतीय सीमा के पार

“कहां से आ रहे हो?” सिलिगुड़ी से दार्जिलिंग आने के लिए हम जिस मोटर में बैठे थे उसी के एक सहयात्री से हमने बातचीत का सिलसिला शुरू करने के इरादे से पूछा।

“गढ़वाल से”, यात्री ने कहा। हमने देखा कि वह हट्टा-कट्टा युवक केवल एक सूती बनियान पहने हुए था, जबकि दार्जिलिंग की ओर लगातार चढ़ती हुई उस मोटर में हम गरम स्वेटर पहनकर भी ठण्ड का अनुभव कर रहे थे। ठण्ड के प्रति उसका यह उपेक्षापूर्ण व्यवहार देखकर और गढ़वाल से आने की बात सुनकर उसके विषय में कुछ और जानने की इच्छा हुई। पूछा तो क्या तुम गढ़वाली हो?

जबाब मिला “नहीं, शेरपा, शेरपा!” नाम सुनकर कान खड़े हो गये। नेपाल और तिब्बत की सीमा पर एवरेस्ट की तलहटी में रहने वाले लोग शेरपा कहलाते हैं और सदा अभियान दलों के साथ कुली बनकर जाया करते हैं, क्योंकि ऐसी संकटपूर्ण यात्राओं में साधारण पहाड़ी कुली कारगर नहीं होते।

उत्सुकता बढ़ चली, मैंने पूछा “गढ़वाल किस लिए गये थे?”

“एक अंग्रेज नीति, माना और नीलंग घाटी की तथा उनकी चोटियों की जांच के लिए गया था, मैं उसी के साथ कुलियों के सरदार के रूप में था।”

इसी प्रकार बातचीत का सिलसिला कुछ और आगे बढ़ने पर उसने हमें अपने प्रमाणपत्र दिखाने शुरू किये जो हिमालय के विभिन्न शिखरों के आरोहण के लिए आने वाले यूरोप के विविध देशों के साहबों ने

दिये थे। उन सब प्रमाणपत्रों में इस व्यक्ति की कुलियों के सरदार, पथ प्रदर्शक और दुभाषिये के रूप में पर्याप्त प्रशंसा की गई थी। हमारे सामने तो अपनी यात्रा के लिए कुलियों का प्रबन्ध करने की समस्या थी ही। अतः नीमा तान्जिंग नामक यह व्यक्ति हमारे लिये बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ। उसने दार्जिलिंग में हमारे लिए शेरपा कुलियों का प्रबन्ध कर दिया और स्वयं हमारा 'गाइड' बना।

## दार्जिलिंग से प्रस्थान

12 सितम्बर के मध्याह्न को जब हम दार्जिलिंग से रवाना हुए तब हमारे साथ 6 कुली थे जिनमें 4 पुरुष और 2 स्त्रियां थीं। कुलियों के रूप में स्त्रियों को देखकर आश्चर्य हुआ। किन्तु पीछे पता लगा कि वे दोनों (रेडा और दीका) केवल भारवाही सामान्य कुली नहीं हैं, प्रत्युत इससे पूर्व भी वे दो तीन अभियान दलों के साथ जा चुकी हैं। पेम्बा नरबु नामक शेरपा सबसे अधिक आयु का था, जिसे अनेक अभियानों का अनुभव था। कुसांगकेशी 25 वर्ष का सुन्दर युवक था और मिंगमा नरबु और अजीबा की आयु 20-22 वर्ष से अधिक की नहीं थी।

सिंगमढी, पाटलियाबांस, तगवार और बर्नबेग होते हुए हम शाम को 6 बजे सिंगला बाजार पहुंचे। सारे रास्ते में चाय के बाग बिछे पड़े थे। दूर से हरी मखमल की तरह चमकने वाली ये चाय-वाटिकाएं दृष्टि को आकर्षित तो करती थीं परन्तु सघन वनश्री की सहज श्यामलता मन में जिस उन्माद की सृष्टि करती है उसका वहां अभाव था। तगवार में बागों के अंग्रेज मालिक की कोठी और बर्नबेग में इंग्लैण्ड की 'लेबोंग 'टी कम्पनी' का कारखाना भव्य और विशाल होते हुए भी वहां बड़े पैमाने पर किये जाने वाले शोषण के करुण दृश्य मानस पटल पर उपस्थित हुए बिना नहीं रहते। रह-रह कर इन बागों में दस-दस बारह-बारह आने रोज पर काम करने वाले हजारों स्त्री-पुरुषों का ध्यान आता था, जिन पर गोरों द्वारा किये जाने वाले अत्याचारों की कथाएं कभी-कभी सुनने को मिल जाती हैं।

रास्ता लगातार उतार का था। हम चलते-चलते परेशान हो गये। कहां तो हम दार्जिलिंग में 7,000 फीट की ऊंचाई पर थे और कहां

अब उतरते-उतरते रिंगित के तट पर पहुंच गये जो समुद्र तल से केवल 1200 फीट ऊंचा है। पहाड़ की चढ़ाई कठिन होती है यह तो सभी जानते हैं परन्तु उतार भी कम कठिन नहीं होते, यह भुक्तभोगी ही जानते हैं। मार्ग में कहीं-कहीं आड़ू, शिरीष, निवाड़ा, बांस, गलगल, साल तथा चीड़ के पेड़ मिलते गये, सिंगला पहुंच कर आम और पीपल के भी दर्शन हुए।

सिंगला दार्जिलिंग की आखिरी बस्ती है। इसके आगे सिक्किम शुरू होता है। भयंकर वर्षा से मार्ग के क्षत-विक्षत हो जाने के कारण यहां सप्ताह में एक बार पहुंचने वाली डाक उन दिनों और भी देर से पहुंचती थी। वहां का बंगाली डॉक्टर तथा एक बिहारी पण्डित यह जानने को बड़े उत्सुक थे कि कांग्रेस-अध्यक्ष के चुनाव का जो संघर्ष चल रहा था उसमें कौन विजयी हुआ। और जब हमने उन्हें बताया कि राजर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन को सफलता मिली है, तब यह समाचार उनके लिए उतना ही नया था जितना एक सप्ताह पहले दिल्ली में हमारे लिए।

## भारतीय सीमा के उस पार

13 सितम्बर को सवेरे जब हम सिंगला से चले तो रामंग नदी के पुल के इस पार भारतीय सीमा समाप्त हो गई। पुल के उस पार सिक्किम है। इधर से उधर जाने के लिए अनुमति पत्र लेना आवश्यक होता है। दोनों तरफ पुलिस चौकियां बनी हुई हैं। सिक्किम की पुलिस ने सामान की छानबीन के साथ यह भी नोट किया कि हम कितने दिन सिक्किम में रहेंगे। भारत स्वतंत्र हो गया है, देशी राज्य एक एक करके भारतीय संघ में विलीन हो गये हैं और अब सिक्किम में भी भारतीय प्रशासक पहुंच गया है। इसलिए हमें प्रवेशपत्र (पासपोर्ट) की आवश्यकता तो नहीं पड़ी, किन्तु बन्दूक का लाइसेन्स दिखा देने पर भी उसे लेकर सिक्किम में प्रवेश करना वैध है या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए चौकी का एक सिपाही 1.5 मील दूर नया बाजार के थाने तक हमारे साथ आया। थानेदार ने बन्दूक पर कोई आपत्ति नहीं की।

हिसार और बीकानेर तक के लोग नया बाजार में व्यापार करने पहुंचे हुए हैं और वहां जितनी भी दुकानें हैं सब उन्हीं लोगों की हैं।

कहावत तो यह है कि 'जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि' किन्तु यह कहावत हमें चरितार्थ होती मिली मारवाड़ियों के साथ। सारी यात्रा में हमारे इस अनुभव की पुष्टि होती गई कि जहां रवि की किरणों की भी पहुंच मुश्किल से होती है वहां मारवाड़ी पहुंच जाता है। यही कारण है कि आज सारे देश का व्यापार इन्हीं लोगों के हाथ में है। ठीक भी है 'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।'

नया बाजार में हमारे कुछ मित्रों ने आतिथ्य के अतिरिक्त राशन आदि जुटाने की अन्य व्यवस्था में हमें अच्छा सहयोग दिया। यात्रा की अवधि का अनुमान लगाकर हमने अनावश्यक चीजें वहीं छोड़ दी। और बेचारे कुलियों को जो हमारे हठ से निश्चित भार (35 सेर) से अधिक वजन उठाकर ला रहे थे राहत मिली।

रामगं और रिंगित के संगम पर बने पुल के पार एक सड़क कालिम्पोंग जाती है और सिक्किम का अधिकांश व्यापार इसी रास्ते से होता है। नया बाजार इस मार्ग में भारत और सिक्किम के मध्य का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र है। मध्याह्न को हम यहां से आगे बढ़े।

## सिक्किम के जंगलों में

अब सिक्किम के वास्तविक जंगल शुरू हुए। खूब हरे-भरे और सघन। वनस्पतिविज्ञों की दृष्टि से सिक्किम के जंगल का बड़ा महत्व है। जितनी तरह के वृक्ष और वनस्पतियां यहां मिलती हैं उतनी अन्यत्र दुर्लभ हैं। सिम्बल, सुहांजना, साल, दबदबा, आंवला, अर्जुन और कचनार के पेड़ तथा दूधी और बड़ी कटहरी की झाड़ियां व रत्ती तथा माल-झाड़ की लताएं तो हम भी पहचान सके। बस्तियों के आसपास नारंगी, केला, आड़ू, बड़ और पीपल भी दृष्टिगोचर हुए।

अब रास्ता रिंगित के किनारे-किनारे चला। न विशेष चढ़ाई थी न विशेष उतराई। परन्तु तलहटी में जंगल होने के कारण गर्मी काफी थी। नदी की कलकल ध्वनि कानों को और जंगल की हरियाली आंखों को सुख पहुंचाती थी। रास्ते में एक स्थान पर पहाड़ टूटा हुआ था। यह उस वर्ष की भयंकर वर्षा तथा भूमि स्खलन का एक और प्रमाण था। अब हमारी समझ में आया कि खच्चरों के चलने योग्य होने पर

भी वह पथ सूना क्यों पड़ा था। जबसे हम नया बाजार से चले थे मार्ग में और कोई पथिक दिखाई नहीं दिया था। दिन में भी जब इस प्रकार के सघन वनों से आच्छादित जन शून्य पथ में से गुजरना पड़ता है तो एकाकी चलते हुए व्यक्ति के मन में अपने आप सन्नाटा सा छा जाता है।

नया बाजार से 4 मील आगे रथोक का पुल आया। वह भी छिन्न भिन्न हो गया था यही कारण था कि उधर का आवागमन उन दिनों रुका हुआ था।

शाम होते न होते हम रेशी पहुंचे। रेशी सिंगला बाजार से 10 मील है। वहां शराब की दुकान को देखते ही हमारे कुली तृषातुर हो उठे। रात को जब हम सोने के लिये बिस्तर पर लेटे तो रिंगित नदी की कलकल और झिल्ली-रव के संगीत ने एकाकार होकर कान में लोरी सा मधुर स्वर भर दिया जिसे सुनते-सुनते न जाने कब नींद की परी आंखों पर उतर आई।

अगले दिन प्रातः जब हम चले तो फिर वही हरा-भरा सघन सुनसान जंगल और रिंगित की कलकल। मार्ग में बस हम और हमारे कुली, शेष सब निर्जन। लगभग 5 मील चलने के पश्चात मार्ग फिर छिन्न-भिन्न हो गया था। किसी तरह घनी झाड़ियों और बिच्छू बूटी में से गुजरते हुए हम आगे बढ़े और सीधे रिंगित नदी की धारा के निकट पहुंच गये। वहां अस्त-व्यस्त चट्टानों का ऊंचा टीला बना हुआ था, जो देखने में बड़ा डरावना लगता था। नीचे नदी की धारा के ऊपर पहाड़ का एक भाग छज्जे की तरह झुका हुआ 'अब गिरूं तब गिरूं' की दशा में लटक रहा था। पहाड़ से जल की छोटी-छोटी अजस्र धाराएं चू रही थीं। आगे बढ़ने का कहीं कोई मार्ग नहीं था।

### बाल बाल बचे

साथी रतन ने किसी तरह चट्टानों के टीले पर चढ़कर आगे के मार्ग का पता लगाने का प्रयत्न किया। परन्तु वहां मार्ग कहां? एक ओर अस्तव्यस्त चट्टानों का टीला और दूसरी ओर रिंगित की सर्वग्रासी तूफानी लहरें। साथी अभी टीले के ऊपर चढ़ा हुआ जांच ही कर रहा



था कि पहाड़ के ऊपर से एक पत्थर खिसक कर आया और कनपटी के पास से झपटता हुआ नदी की लहरों में गायब हो गया।

वहां खड़ा होना भी खतरनाक था। पता नहीं कब पहाड़ का आगे झुका हुआ हिस्सा लुढ़क कर हमारे ऊपर जा पड़ता और हम उसके नीचे दब जाते। अभी कुछ देर पहले साथी मनोहर तो एक पानी की धारा पार करते हुए गिर ही पड़ा था और उसकी छाती में चोट लग गई थी।

अब आगे नहीं बढ़ा जा सकता था। अतः हम सोचने लगे— “क्या हमें यहीं से वापस जाना होगा? जिस उद्देश्य को लेकर चले थे क्या हम उसके निकट तक भी नहीं पहुंच सकेगें?”

बहुत सोचने के बाद हम 1-1.5 मील पीछे लौटे और अपने ‘गाइड’ की सहायता से पहाड़ के ऊपर चढ़ने का एक और मार्ग खोजकर किसी तरह लेगसिप पहुंचे।

किन्तु यहां फिर आगे का पुल टूटा हुआ था और उस टूटे हुए पुल के कबाड़ को ही रस्सियों और बांसों के सहारे बांधकर किसी तरह सम्हाला गया था। किनारे पर पांव रखते ही सारा पुल हिलने लगा। खाली आदमी तो किसी तरह डरते-डरते रस्सी पकड़कर पार भी हो सकता था, परन्तु मन भर बोझ उठाये कुली कैसे पार होते? परन्तु वाह रे शेरपा कुली! ये तो डरना जानते ही नहीं। एक-एक कर छहों कुली पूरे सामान के साथ सही सलामत उस जर्जर पुल को पार कर गये। फिर हमारी बारी आई और नीचे हहराती हुई नदी की ओर से आंखें हटाये हम डरते-घबराते किसी प्रकार पार पहुंचे और विश्राम करने बैठ गये।

परन्तु हम अधिक विश्राम न कर सके। आसमान में बादल छा गये और सिक्किम के जंगलों में होने वाली भयंकर वर्षा के भय ने— जिसमें छाते और बरसाती तक बेकार होते हैं— हमें तुरन्त चलने को बाधित कर दिया।

## सिक्किम का अन्तिम डाकघर गेजिंग

आधे मील के बाद गेजिंग की चढ़ाई शुरू हुई। चिकनी मिट्टी की पक्की जमीन के उस फिसलन भरे रास्ते पर हम जमा-जमा कर पैर बढ़ाते रहे और आखिर एक तिब्बती ढंग के ‘माने’ पर पहुंचे। ‘माने’ उस

लम्बी दीवार को कहते हैं जिसकी शिलाओं पर तिब्बती भाषा में मन्त्र खुदे होते हैं। यह दीवार सदा पथिक के दायें हाथ की ओर ही रहनी चाहिए। यदि कोई इसे बायें ओर करके चले तो अशुभ माना जाता है।

सामने चौरस मैदान फैला पड़ा था। उसके तीन तरफ दुकानें थीं और एक तरफ जंगलात का दफ्तर, डाकखाना और थाना। मैदान के नीचे चारों ओर पहाड़ के ढलाव पर बस्ती बसी हुई थी। यही गेजिंग था। इस मार्ग में सिक्किम का अन्तिम डाकघर।

## सिक्किम के वन में

गेजिंग का अर्थ है राजा की बाड़ी। स्थान अपने नाम के अनुरूप है। गंगटोक से पहले यही स्थान सिक्किम की राजधानी था और लगभग 700 वर्ष तक उसने अपने इस सौभाग्य को अक्षुण्ण रखा। परन्तु राजाओं के भाग्य के साथ राजधानियों का भी भाग्य बदलता रहता है। परिवर्तनशील संसार का यही नियम है। अब भी यहां से दो मील दूर 7 हजार फीट की ऊंचाई पर जो पेमियांची की प्रसिद्ध गुम्फा (मठ) बनी हुई है वह इसके प्राचीन गौरव को बताने के लिए पर्याप्त है। पेमियांची का मठ न केवल सिक्किम का सबसे बड़ा मठ है प्रत्युत राज्य की अधिकांश आय इसी पर व्यय होती है। सिक्किम का राजगुरु भी पेमियांची में रहता है। तिब्बत के धर्मगुरु दलाई लामा की भांति यहां का प्रधान लामा राज्य का सबसे बड़ा अधिकारी तो नहीं होता, किन्तु लामाओं की शक्ति यहां भी सर्वोपरि है और पेमियांची की गुम्फा लामाओं के गढ़ के रूप में यहां की समस्त शक्ति का केन्द्र है।

## प्रेतात्मा का निष्कासन

गेजिंग में श्री छुकछुक से हमारा परिचय हुआ जो स्थानीय कांग्रेस के प्रधान हैं। लम्बा चौड़ा डीलडौल और अग्नि के समान भभकता चेहरा। प्रथम परिचय में उस महनीय आकृति को विषण्णवदन देखकर क्षोभ हुआ। पता लगा कि 5 दिन पहले उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया है। हम जिस दिन पहुंचे थे उसी दिन उसका 'चौथा' था।

इस संस्कार में सम्मिलित होने के लिए श्री छुकछुक ने हमें भी सप्रेम आमंत्रित किया। उनके घर के एक कमरे में मृत व्यक्ति के प्रेत को भगाने के लिए पूजा पाठ हो रहा था। एक लामा की निगरानी में दो व्यक्ति मुख से तिब्बती भाषा के धर्म ग्रन्थ का पाठ करते जाते थे और हाथों से मंजीरा और ढोलकी बजाते जाते थे। उनके सामने एक कृष्णवर्णी प्रेत-प्रतिमा रखी थी, जिस पर वे अभिमंत्रित दाने फेंकते जाते थे। पाठ की समाप्ति पर सबने खूब जोर से 'हो-हो' करके शोर मचाते हुए और मकान के कोनों और दीवारों को छड़ी से पीटते हुए प्रेत को भगाया और उसे घर से बाहर निकालकर बन्दूक की दो गोलियां छोड़ीं।

छुकछुक महोदय के घर में सुभाष बोस, जवाहरलाल नेहरू और महात्मा गांधी की तस्वीरें लगी हुई थीं। उनसे बातचीत करने पर पता लगा कि सारे सिक्किम की लगभग डेढ़ लाख की आबादी में करीब 10 हजार लोग कांग्रेस के सदस्य हैं और एक-तन्त्री शासन के विरुद्ध यहां भी जन आन्दोलन बड़े जोरों से चल रहा है। इसी आन्दोलन के सिलसिले में छुकछुक जी एक बार जेल भी हो आये हैं। वैसे तो अब सिक्किम में भारतीय प्रशासक दीवान जे.एस. लाल पहुंच गये हैं, किन्तु शासन में जनता के प्रतिनिधियों का भी नाम-मात्र ही हाथ है और उनके विरुद्ध भी जनता में उतना ही असन्तोष है जितना महाराज के प्रति था।

गेजिंग में नारंगी और बड़ी इलायची की पैदावार बहुत काफी है। यहां सबसे बड़ा व्यापार इलायची का ही है। यहां जो भाव इलायची का है (50 रु. मन) वही चने का है। कारण पहली चीज सुलभ है, दूसरी दुर्लभ। यही हाल घी और तेल का है। चंवर गाय का बढ़िया घी 3.5 रु. सेर है तो तेल भी इसी भाव। इधर का चावल बहुत अच्छा है। धान का भाव 16 रु. मन है। शुक्रवार को पैंठ लगती है जिसमें आसपास के देहाती अपने यहां की पैदावार बेच जाते हैं। और अपनी जरूरत का सामान ले जाते हैं।

## पेमियांची की गुम्फा

अगले दिन चले तो चिलौने का जंगल मिला— खूब घना। इधर के जंगलों में नमी तो वैसे ही बहुत है फिर जब जंगल इतना घना हो

कि भगवान मरीचिमाली<sup>1</sup> अपने तेज करो<sup>2</sup> से आन्तरिक भूभाग को छू भी न सकें, तो फिर अन्य का क्या कहना? दो मील की लगातार चढ़ाई के बाद पेमियांची के डाक बंगले पर पहुंचे। यह इस मार्ग का अन्तिम डाकबंगला है— आधुनिकताओं से सुसज्जित! इसके सामने महान कंचनजंघा की शुभ्र हिमावलि का अलौकिक दृश्य दिखाई देता है।

साथ के ही पर्वत शिखर पर पेमियांची की प्रसिद्ध गुम्फा (तिब्बती मठ) है। बीच में वहां का विशाल मन्दिर है और उसके तीन ओर लामाओं के निवास योग्य मकान। मकान सब लकड़ी के हैं। मन्दिर में बाहर के विशाल गुम्बद को छोड़कर—जो नीचे से ऊपर तक सारा का सारा रत्न-मण्डित है— अन्दर बाहर सब जगह लकड़ी का ही काम है। मन्दिर सचमुच दर्शनीय है। इस मन्दिर से भी अधिक दर्शनीय है अन्दर की दीवारों पर की गई चित्रकारी। रंगों की प्रचुरता और कलम की बारीकी को देखकर यही कहने को मन करता है कि जीवनोपयोगी अन्य कलाओं में तिब्बत व यहां की जनता चाहे कितनी ही पिछड़ी हुई क्यों न हो, चित्रकला की दृष्टि से इनका संसार में विशिष्ट स्थान है।

इस मठ को एक तरह का ब्रह्मचर्याश्रम कहना चाहिए। जो अपने बालकों को लामा बनाना चाहते हैं वे उन्हें यहां भेज देते हैं। यहां उनकी निःशुल्क शिक्षा-दीक्षा और भोजनाच्छादन<sup>3</sup> का प्रबन्ध है।

## लामाओं का नृत्य

मन्दिर के एक ओर सामने चौकोर मैदान है जिसके चारों ओर बैठने के लिए लकड़ी की बेंचें सी बनी हुई हैं और उनके ऊपर टीन की छत पड़ी है। जब कभी बड़े लामा का उपदेश होता है तो वह मन्दिर के ऊंचे छज्जे पर बैठकर भाषण देते हैं। अन्य सब छोटे लामा बेंचों पर बैठते हैं। सामान्य जनता बीच के खुले मैदान में बैठती है। माघ और पौष मास में जब चारों ओर बर्फ छाई होती है तो इसी मैदान में

---

1. सूर्य देवता

2. किरणें

3. खाने और सोने

बर्फ के ऊपर लामाओं का नृत्य होता है। उस नृत्योत्सव में राज्य भर के लामा एकत्र होते हैं और तरह-तरह की भयंकर आकृतियां धारण करके नाचते हैं। यह 'असू नृत्य' आसुरी शक्तियों पर दैवी शक्ति की विजय के लिए प्रतिवर्ष किया जाता है।

आगे तीन मील तक लगातार उतार है। पेमियांची तक अच्छी सड़क है। मोटर के लायक तो नहीं किन्तु खच्चर के लायक अवश्य। पर उसके बाद रास्ता खच्चरों लायक भी नहीं रह जाता। इस संकीर्ण रास्ते पर उतरते-उतरते हम परेशान हो गये। चलते चलते राथोंग छू (नदी) के पुल पर पहुंचे। पुल के पार फिर चढ़ाई आरंभ हुई।

नदियां भी कैसी आफत<sup>4</sup> हैं? दूर से जो नदी चांदी के तरल प्रवाह सी मन को मोह लेती है और निकट आने पर अपनी कलकल ध्वनि का संगीत कानों में पहुंचा कर सारा श्रम हर लेती है, हारे-थके पथिक का एकमात्र सम्बल जड़ जंगल में चैतन्य की रेखा सी यह उछलती कूदती जलधारा यदि न होती तो क्यों बारबार उतरना पड़ता और फिर क्यों चढ़ना पड़ता? यदि यह नदी न होती तो हम सीधे ही भागते चले जाते।

दो मील की चढ़ाई के बाद थिंगलिन की जरा सी बस्ती और दो मील की उतराई। फिर नदी का पुल और फिर चढ़ाई।

धीरे-धीरे शाम सरकती आ रही है। सूर्य अस्ताचल की ओर भागता जा रहा है। कुली पीछे रह गये हैं। हम यथासम्भव जल्दी चल रहे हैं। पर चढ़ाई में जल्दी कहां चला जाता है? बारबार चढ़ाई चढ़ते और लम्बा उतार पार करते करते पैरों का कचूमर निकल गया है। किन्तु मंजिल अभी दूर है।

शाम के झुटपुटे में जब बस्ती नजर आई तो समझा कि आज का पड़ाव आ गया। पर पता लगा कि यह तो एण्टांग है और हमारा निर्दिष्ट पड़ाव अभी 2 मील और दूर है। पांवों की बची खुची शक्ति और हृदय की हिम्मत बटोर कर हम फिर आगे चले।

---

<sup>4</sup> ये उद्गार केवल इसलिए हैं कि दुर्गम पहाड़ी मार्ग ने थका दिया था। अन्यथा तो नदियां हमेशा जीवनदायिनी ही होती हैं।

हमने जब यकसोम की सीमा में पांव रखा तब अच्छी तरह अंधेरा हो चुका था। सब साथी थककर चूर हो गये थे। बस्ती का पहला मकान मिलते ही सब वहीं बैठ गये। मैं नीमा को साथ लेकर अंधेरे में रिंगजिंग येंगडोंग लामा—यकसोम के सबसे बड़े आदमी— का मकान तलाश करने निकला। अन्धेरे में भी बहुत नहीं भटकना पड़ा। प्रहरी कुत्ते से बचकर जब काजी के मकान के अहाते में पहुंचे तो पथपदर्शक ने आगे जाकर लामा को सूचना दी। लामा बाहर निकल कर आये। मैंने उच्च स्वर से कहा— “खमजम् भो खमजम (नमस्कार)।”

लामा ने पहले अपनी जीभ बाहर निकाली फिर फूंक मारकर कहा “कुल खमजम (प्रति नमस्कार)।” मैं उसकी जीभ निकालने और फूंक मारने की क्रिया को देखकर पहले तो चकराया, फिर शीघ्र ही ध्यान आ गया कि तिब्बत में अभिवादन का यही तरीका है

## लामा के साथ

लामा ने अपना आदमी भेजकर बाकी सब साथियों को भी वहां बुला लिया। बारबार कठिन चढ़ाई—उतराई के कारण आज हमारे कुली पीछे रह गये थे। खाने—पीने और ओढ़ने—बिछाने का सब सामान उन्हीं के साथ था। किन्तु उनके पड़ाव पर न पहुंच सकने के कारण लामा ने तथा उसके सारे परिवार ने जिस तत्परता से हमारा आतिथ्य किया वह इस दूर देश में धन से नहीं केवल मनुष्यता से ही सम्भव है। लामा का घर सामान्य है। किन्तु यहां चौकोर पत्थरों पर चुनी हुई यह दुर्भोजनी इमारत किसी राजमहल से कम थोड़े ही है। खिड़कियों में पारदर्शक शीशे भी लगे हुए हैं। यकसोम आखिरी बस्ती है और हमें अपने राशन की व्यवस्था के लिये अगले दिन भी वहीं ठहरना पड़ा। इन दो दिनों में लामा परिवार के प्रेम ने मन को चारों ओर से इस प्रकार अभिभूत कर लिया कि आज भी वह स्मृति में ज्यों का त्यों ताजा है।

अगले दिन प्रातःकाल जब हमने इस परिवार से विदा ली तो न जाने क्यों, कदम तो आगे बढ़ते थे किन्तु दृष्टि बारबार पीछे मुड़ जाती थी। मैंने साथी रतन से कहा— “रतन, पीछे मुड़कर मत देखना, नहीं

तो जिस तरह बचपन में परियों की कहानियां पढ़ी हैं जिनमें पीछे मुड़कर देखने वाला पत्थर बन जाता है वैसे ही मुड़कर देखते ही पत्थर बन जाओगे।”

यह बात पूरी तरह कह भी न पाया था कि हम चारों की दृष्टि एकदम पीछे की ओर मुड़ गई और हमने देखा कि घर की प्रौढ़ लामा पत्नी और दोनों तरुणी कन्याएं अपनी आंखों से संसार का सबसे अधिक मूल्यवान पानी पोंछ रही थीं।

यहां बांस का जितना विस्तृत जंगल है उतना ही विस्तृत उसका उपयोग भी है। घरों की छतों में, छज्जों में, खेतों की बाड़ में उसका आम उपयोग है। किन्तु जब मोटे-मोटे खोखले बांसों को पानी की टंकियों के रूप में प्रयुक्त होते हुए देखा या बांसों के ही नलों से मीलों तक खेतों में पानी पहुंचते हुए देखा तो मनुष्य की आविष्कारक बुद्धि पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा।

हिमालय के उत्तर-पश्चिमी भाग में इस ऊंचाई पर चीड़ के और कुछ और ऊंचाई पर देवदार के दर्शन प्रारंभ हो जाते हैं। किन्तु सिक्किम के जंगलों में ऐसा नहीं है। गढ़वाल और कांगड़ा की ओर जो वृक्ष वनस्पति 7 हजार फीट की ऊंचाई पर मिलती है वह यहां 9 हजार फीट की ऊंचाई पर मिलेगी। उधर 11 हजार फीट की ऊंचाई पर वृक्ष श्रेणी समाप्त हो जाती है किन्तु इधर 16 हजार फीट की ऊंचाई तक भी जंगल चलता जाता है। हिमालय के उस भाग में जैसी शुष्क वायु और वर्षा की कमी है वैसी अवस्था यहां नहीं है। इसलिए इधर का जंगल अधिक घना भी है और अपेक्षया अधिक ऊंचाई तक भी चलता है।

## जोंक की मुसीबत

आज के रास्ते में एक और मुसीबत का सामना करना पड़ा। इसका नाम है जोंक। रास्ते भर में जोंक ही जोंक— और कितने ही प्रकार की। काली से चितकबरी तक, आधे इंच से तीन इंच तक, घोड़े के बाल से लेकर दीये की बत्ती तक, नाना वर्ण, नाना आकार, नाना परिणाम। वर्षा के कारण फिसलन भी बढ़ गई— ‘सखि ते पिच्छिलः पन्थाः।’

पगडण्डी अत्यन्त संकरी है। लगातार चढ़ाई-उतराई। फिर भी मार्ग ऊपर ही ऊपर चढ़ता चला जाता है। जंगल घना है। साथ ही भयंकर भी और इधर ये जोंकें— भूमि पर झाड़ियों पर और वृक्षों की शाखाओं पर— नीचे, पार्श्व में और ऊपर। इनसे बचा नहीं जा सकता था। आदमी को देखते ही चिपट जाती हैं पैरों में, पीठ में, शरीर के किसी भी भाग में न जाने किधर से घुस जाती है और चुपचाप रक्त पीने लगती है। जब रक्त पीकर मोटी हो जाती है तो अपने आप छूटकर गिर पड़ती है। कैसा शान्त और सर्वग्रासी शोषण है इनका?

पर ज्यों-ज्यों आगे बढ़े त्यों-त्यों मेरे मन में एक और भाव काम करने लगा। ये जोंकें बेचारी न जाने कब से इन जंगलों में भूखी-प्यासी पड़ी हैं, रक्त की लालसा में इनके होंठ सूख गये हैं, इस निर्जन बियावान में पता नहीं कब से कोई मुसाफिर नहीं आया, चलो हमारे आने से इनका थोड़ा बहुत उपकार तो हुआ। मैं गुनगुनाने लगा—

**बला से पैर गर छिद गये, किसी के काम तो आये;**

**न जाने शुष्क लब कांटे पड़े कब से बियाबां में।**

मध्याह्न के दो बजे के लगभग हम शाचिंग पहुंचे। घने जंगल के बीच एक छोटी सी फूस की छत खड़ी है— एकाकी और सुनसान। और कहीं किसी बस्ती का नाम-निशान नहीं। पहुंचते ही वर्षा शुरू हो गई— सिक्किम की भयंकर वर्षा। अब तो रात को यहीं पड़ाव पड़ेगा। यह भी अच्छा हुआ कि वर्षा के समय फिसलन भरी उस पगडण्डी पर होते तो न जाने क्या होता? एक-एक कदम सम्हाल कर रखने पर भी बार-बार फिसलने का डर। एक खतरनाक स्थान से गुजरते हुए कुसांगकेशी जैसे सधे हुए शेरपा का भी पांव फिसल गया और एक बोझ नीचे नाले में गिर गया। एक दूसरे में गुथे हुए वृक्षों से टकराकर वह 'बोझ' कुछ फीट नीचे लुढ़क कर ही अटक गया। यदि जंगल इतना घना न होता तो पता नहीं कितने हजार फीट नीचे जाकर गिरता।

शाचिंग की यह छोटी सी छत ही क्या कम गनीमत थी! जिस किसी ने भी उसका निर्माण किया उसके लिए दिल से दुआयें। वही हमारा डाकबंगला बना। बैठकर जूतों और जुराबों के अन्दर घुसी हुई



जोंकों की तलाशी ली गई और लहुलुहान पैरों को सहलाते हुए गरम गरम चाय पी गई। रीछ के भय से रात भर आग जलाई गई।

## शिखर से शिखर पर

अगले दिन लगातार चढ़ाई। उतराई का नाम नहीं। हम 8 हजार फीट से ऊंचे चल रहे हैं। रास्ता कल जैसा भयप्रद नहीं है। पांव फिसलने से खड्डे में गिरने की शंका भी नहीं है क्योंकि अब पगडण्डी पहाड़ की बगल पर नहीं उसकी पीठ पर चल रही है। जिस तरह रीढ़ की हड्डी ऊपर होते होते सिर के मूल तक पहुंच जाती है उसी तरह इस पगडण्डी ने भी हमें पर्वत के शिखर तक पहुंचा दिया। सोचा था शिखर आया, चढ़ाई समाप्त होगी। परन्तु यह क्या— एक शिखर पर पहुंचने के बाद दूसरा शिखर सामने आ गया। फिर तीसरा फिर चौथा। इस तरह यह सिलसिला लगातार आगे बढ़ता गया। ज्यों-ज्यों चढ़ते गये त्यों-त्यों सुरसा के शरीर की तरह चढ़ाई और बढ़ती गई। हम भी चढ़ते चले गये।

टेसू को मात करने वाले उसके लाल फूल! जंगली गुलाब के पौधों पर लगी ये एकदम सुर्ख कलियाँ— मानो किलकारी भरते हुए अबोध बच्चे के दांत चमक रहे हों! कितनी प्रलोभन भरी हैं ये! हाथ बढ़ा कर तोड़ने को जी चाहता है। रूप का लोभी मन, बुद्धि उसकी लगाम कसती है। नहीं, इनके वहां लगे रहने में ही अधिक शोभा है। और बीच-बीच में लगे हुए ये साल और बांस के पेड़ सब आपस में गुंथे हुए, दृढ़ आलिंगन में बद्ध! उनके तनों पर जमी हुई एक-एक फुट मोटी सिवार। धूप के अभाव में श्यामायमान वन का यह कुंजनुमा मीलों तक चला जाने वाला पथ! कहीं कहीं तो ऐसा लगता जैसे सचमुच ही किसी कृत्रिम उद्यान में चले जा रहे हों। 10 और 12 हजार फीट की ऊंचाई पर ऐसा नयनाभिराम जंगल का दृश्य संसार में अन्यत्र दुर्लभ है। काश, किसी फिल्म निर्देशक की दृष्टि इस पर पड़ती।

धीरे-धीरे वृक्ष श्रेणी विरल हो गई। पथ और चढ़ता चला गया और 3 बजे हम लगभग 13000 फीट ऊंचे मोनलापचा पड़ाव पर पहुंच गये। आज पहली बार तम्बू गाड़ने पड़े। जब एक के बाद क्रमशः तीन तम्बू

गड़ गये और दो बड़ी बरसातियां जोड़कर 'पाकशाला' तथा सामान रखने का स्थान भी बन गया तो चारों ओर घनी झाड़ियों से घिरे इस निर्जन ऊंचे टीले पर भी बस्ती सी बस गई। अब तक वन की सघनता के कारण हिमालय की चोटियां नज़र से ओझल थीं, किन्तु यहां पहुंचते ही हम वन-लोक से ऊपर उठ गये। हिमाच्छादित शिखर सामने आ गये और हमें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि हम इनके कितने निकट पहुंच गये हैं।

हलकी-हलकी वर्षा और तेज हवा के कारण ठण्ड बढ़ गई थी। तम्बू से बाहर अधिक देर रहना कठिन था। तम्बू के अन्दर घुसकर थर्मामीटर निकालकर तापमान लिया तो दिन के साढ़े तीन बजे 50 अंश (फारेनहाइट) निकला।

## पण्डिम शिखर अभियान

हिमालय के तीन लोक हैं। पहला है वन-लोक जो पर्वत के पाद-प्रांत से लेकर उसके कटि भाग तक चलता है। वन-लोक 10 और 11 हजार फीट की ऊंचाई पर समाप्त हो जाता है। दूसरा है पुष्प-लोक, जो कटि से लेकर कण्ठ तक चलता है। पुष्प-लोक की परिधि छोटी है किन्तु अत्यन्त आह्लाद दायक। पुष्प-लोक की सीमा भी 14-15 हजार फीट की ऊंचाई पर समाप्त हो जाती है। उसके पश्चात शुरू हो जाता है हिम-लोक। यह हिम-लोक पर्वत के कण्ठभाग से शुरू होकर उसके शिखर तक चलता है और वह शिखर अन्त में आकाश के साथ मिलकर इस प्रकार एकाकार हो जाता है कि शिखर की समाप्ति और आकाश के प्रारंभ में विवेक करना कठिन हो जाता है।

## पुष्प-लोक में

13220 फीट ऊंचे जोंगरी के मैदान में पहुंचकर हम पुष्प-लोक में प्रविष्ट हो गये। मीलों तक फैला हुआ यह उच्चासन मैदान, दूर तक बिछी हुई यह छोटी-छोटी घास की चटाई और उसके बीच में खिले हुए रंगबिरंगे फूलों का अनोखा दरबार! साथी रतन ने जब एक बार

नीले, पीले, बैंगनी और लाल फूलों के गुच्छे तोड़कर हाथ की छड़ी में बांध लिये तो ऐसा लगता था कि हमारे साथ ही एक सुन्दर गुलदस्ता भी चला जा रहा है जो क्षण-क्षण में रंगों की मोहिनी से हमारा ध्यान बरबस अपनी ओर खींच लेता था। मुझे अनायास कश्मीर के गुलमर्ग, खिलनमर्ग तथा सोनमर्ग के मैदानों का ध्यान आ गया। इतनी ऊंचाई पर जहां भी मैदान हैं वहां पर इसी तरह पुष्प-लोक का नयनाभिराम अखण्ड साम्राज्य है। पर गुलमर्ग और खिलनमर्ग से इस 'मर्ग' (मैदान) की कोई तुलना नहीं। वहां तो मनुष्य ने पहुंचकर प्रकृति को अपने संसर्ग से दूषित कर दिया है। यहां प्रकृति का एकदम अछूता वन्य रूप विराजमान है।

जोंगरी से एक दिन के पड़ाव की दूरी पर है कबरू 'हिमाल' जिस पर स्काटलैण्ड वासी डा.ए.एम. कंल्लस ने अब से 29 वर्ष पूर्व ओषजन (ओक्सीजन) संबंधी अनेक परीक्षण किये थे। वही डा. कंल्लस सन 1921 में माउण्ट एवरेस्ट (-तिब्बती नाम चोमो तुंगमा, नेपाली नाम सरग (स्वर्ग) माथा (मस्तक) -) के प्रथम अभियान दल के साथ गये, किन्तु शरीर ने उनका साथ नहीं दिया। लगभग 17,000 फीट ऊंचे फारी दर्रे को पार करते हुए उनके प्राण पखेरू उड़ गये। आज भी खाम्बा दजोंग नामक स्थान के दक्षिणवर्ती पर्वतीय ढाल पर ऐन एवरेस्ट के सामने उनकी कब्र बनी हुई है, जो संसार की उस सर्वोच्च चोटी के आरोहण का प्रयत्न करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रेरणा देती है। तबसे लेकर अब तक 7 बार उस महान एवरेस्ट के आरोहण का प्रयत्न किया जा चुका है, परन्तु कभी सफलता नहीं मिली। हिमालय का यह सर्वोच्च शिखर आज भी ज्यों का त्यों अजेय है।

सबसे पहले डगलस फैशफील्ड ने कांचनशृंग के अभियान का प्रयत्न किया था। उसके पश्चात जर्मनी के साहसी यात्री बाउए ने दो बार अभियान दलों का संगठन करके कांचनशृंग की विजय का प्रयत्न किया किन्तु उस पर 24 हजार फीट से अधिक ऊंचे नहीं जा सके, जबकि माउण्ट एवरेस्ट पर लोग 28 हजार फीट की ऊंचाई तक जा चुके हैं। विशेषज्ञों की राय में एवरेस्ट के बजाय कांचनशृंग को पार करना कहीं अधिक कठिन है। शायद इसीलिए इधर के लोग उसे 'कुम्भकर्ण

हिमाल' कहते हैं। अभी कुछ दिन पहले एक स्विस् अभियान दल भी इधर आया था, किन्तु कहते हैं वह दल जोंगरी से आगे नहीं बढ़ सका।

## शिखर देवताओं के मन्दिर

जोंगरी से एकसाथ नजर आने वाली कांचनशृंग माल की तीन चोटियां—नरसिंह, पण्डिम और कंचनजंघा के प्रतीक स्वरूप तीन छोटे छोटे मन्दिर एक साथ यहां बने हुए हैं। थोड़े से पत्थरों को गुम्बदाकार रखकर एक वैसा ही चौथा मन्दिर कबरू के शिखर के लिए बना है। यहीं से इन चारों मन्दिरों के द्वारा चारों चोटियों के हिम देवों की उपासना की जाती है। इधर के लोगों का ख्याल है कि हिमालय के प्रत्येक ऊंचे शिखर पर एक देवता रहता है और यदि उस शिखर पर आरोहण करते हुए कोई व्यक्ति बर्फ में फिसलकर या अन्य किसी दुर्घटना से मर जाये तो समझा जाता है कि अमुक हिम-देव उस पर कुपित हो गये या ऐसे दुस्साहसी व्यक्ति को देवता के चरणों में बलि होना पड़ा। ये शिखर दुर्लभ भी इसलिए बनाये गये हैं कि कोई उन देवताओं की एकान्त लीलास्थली में पांव न रख सके। इन हिम-देवों की पूजा के लिए सिक्किम की महारानी प्रतिवर्ष जोंगरी तक आती हैं। इन मन्दिरों में ही उन महान और अदृश्य हिम-देवों की आरती उतारी जाती है ताकि प्रजा में सुख शान्ति रहे।

इसी जोंगरी के मैदान में सिक्किम महाराज की चमर गाय और यकसोम के लामा के घोड़े— लगभग 50-60 जानवर—निर्द्वन्द्व चरते-विचरते हैं। इस सुनसान ओर निर्जन स्थान में इन पशुओं को चराने के लिए केवल एक आदमी रहता है जिसकी पत्थरों से बनी एक छोटी सी झोंपड़ी है, छत भी जिसके आधे हिस्से में ही है। वह व्यक्ति दो तीन मास तक यहां रहता है और हिमपात का मौसम आने से पहले ही यहां से नीचे वन-लोक में चला जाता है। इस आदमी की भी क्या विचित्र जिन्दगी है— न कोई संगी, न साथी, दिन रात अकेला अपने जानवरों में व्यस्त। क्या इसके लिए मानव के सामाजिक प्राणी होने का सिद्धान्त सत्य नहीं है।

## जोंगरी से आगे

जोंगरी से आगे बढ़ने पर हिम की संहारक शक्ति के प्रत्यक्ष दर्शन हुए। पर्वत की उपत्यका में जो छोटे छोटे पौधों का जंगल है वह सारा पत्तों से शून्य है। बर्फ से जले हुए ये पौधे ठूँठ बन कर खड़े हैं। अगली बसंत ऋतु में इन पर पत्ते आएंगे और शतकालीन तुषारापात फिर इनकी हरितश्री को लूट लेगा। लुटेरा हिम का दैत्य! पर अब भी यह देखो— जमीन के नीचे से ये रंगबिरंगी बुंदकियों से छोटे-छोटे फूल अपना सिर चट्टानों की ओट में खड़ा किये मानों मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं। घास के इन लाल फूलों को देखकर लगता है जैसे दूर तक वीर बहूटियां बिछी पड़ी हैं। कभी-कभी तो पांव रखते हुए सचमुच ही मन में यह शंका उत्पन्न हो जाती है कि कहीं ये वीर बहूटियां कुचली न जायें। ये फूल प्रकृति की सृजन-शक्ति के द्योतक हैं और जले हुए ठूँठ उसकी संहार शक्ति के। प्रकृति में यह सृजन और संहार किस प्रकार साथ-साथ चलता है। नया आता है, पुराना जाता है, फिर नया आता है और फिर पुराना जाता है— यही सृष्टि का चक्र है, इसी चक्र पर विश्व अवलम्बित है।

अब आगे उतरना पड़ेगा। उतार, उतार, लगातार तीन मील तक उतार। और इन तीन मीलों में लगभग तीन हजार फीट नीचे उतर कर हम फिर पुष्प-लोक से वन-लोक में आ गये। सामने भूधर नितम्ब पर आज यात्रा में पहली बार चीड़ और देवदार का जंगल दृष्टिगोचर हुआ। यह देवदार- देवताओं का वृक्ष- वृक्षों का राजा— इतनी ऊंचाई पर होने वाला तरुवर अपने आकार-प्रकार और निकट हिम-संगी स्थिति के कारण सचमुच इस योग्य है कि शिवजी इसे पुत्रवत मानें और पार्वती स्वर्ण-कलश से इसको सीचें, जैसा कि कालिदास ने रघुवंश में लिखा है—

**अम पुरः पश्यसि देवदारुं पुत्रीकृतोऽसौ वृषभध्वजेन।**

**यो हेमकुम्भस्तन निस्सृतानां स्कन्दस्य मातुः पयसां रसज्ञः॥**

सघन वनलोक में थोड़ी-थोड़ी दूर पर जलधाराएं! जब कलकल-छलछल करती ये जलधाराएं कुंज सदृश वृक्षों के झुरमुट में से और

चट्टानों के ऊपर से कूदती फांदती दिखाई देती हैं तो वृक्षों की शाखाओं पर बैठे मोहन की मुरली की ध्वनि की कल्पना करते ही मन काव्यानन्द के स्वप्न...। पर स्वप्न पीछे लेना पहले यह जलधारा पार करनी पड़ेगी, सो भी पैदल क्योंकि अब आगे और कहीं पुल का नाम भी नहीं मिलेगा।

जूते और जुराब उतारकर किसी तरह धारा पार की। थोड़ी देर में ही पांव ठिठुर गये। इसी तरह एक दो तीन धाराएं लगभग मील भर के फासले में पार करने के बाद सामने आ गई हहराती, शोर मचाती और चट्टानों से टकराती प्रेक छू (नदी)। अब इसे कैसे पार करें?

## पार कैसे हो?

नीमा ने नदी के ऊपर की ओर दूर तक जाकर देखा कि शायद पानी कम हो और नदी पार की जा सके। किन्तु ऐसा स्थान कोई नहीं मिला। घण्टे भर तक किसी प्रकार नदी पार करने की तरकीब सोचते रहे किन्तु कृतकार्यता<sup>5</sup> नहीं मिली। अन्त में नीमा ने निराश होकर अपना फैसला दे दिया— अब आगे जाने का कोई मार्ग नहीं है, इसलिए लौटना होगा।

सबके मन में निराशा छा गई। सहसा सिंगला पार करने के पश्चात जहां भारतीय सीमा समाप्त हुई थी और सिक्किम की सीमा प्रारम्भ हुई थी, उस रामन नदी के पुल पर खड़े हुए नेपाली सिपाही की बात याद आई जिसने कहा था— तुम पण्डिम तक तो क्या जोंगरी तक भी नहीं पहुंच सकोगे, क्योंकि भारी बरसात के कारण सब पुल टूट गये हैं। बहुत हिम्मत करोगे तो जोंगरी तक बेशक पहुंच जाओ किन्तु उसके आगे बढ़ना असम्भव है क्योंकि आगे कहीं पुल नहीं है। उस समय यात्रा के प्रारम्भ में ही उस भलेमानस की यह बात अपशकुन सी लगी थी और लगा था कि हमारे कुलियों की थोड़ी संख्या और विस्तृत आडम्बर का अभाव देखकर उसने हमारी हिम्मत को भी कम आंका है। पर यहां आकर उसी की बात सत्य होती दिखाई दी।

---

<sup>5</sup>. सफलता

क्या हमारी यात्रा यहीं समाप्त हो जायेगी? हम तो पण्डित के आरोहण का स्वप्न लेकर आये हैं। और अभी पण्डित हमसे दूर है। सामने ही उसका 22 हजार फीट ऊंचा शिखर, कभी-कभी बादलों के हटने पर चमक उठता है और हमें अपनी ओर खींचता है। कैसा अदम्य आकर्षण है उसका। केवल एक या दो दिन की यात्रा के बाद हम उसके चरणतल में पहुँच जायेंगे। मंजिल के इतना पास आकर वापस होना पड़ेगा इससे बढ़कर दुःख की और क्या बात होगी। हमारे होशियार और सधे हुए कुलियों ने सब कुछ अच्छी तरह सोच समझकर देख लिया है कि इस नदी पर पुल नहीं बन सकता। प्रयत्न करना बेकार है। यदि एक भी आदमी येनकेन प्रकारेण नदी के पार पहुँच जाय तो पुल बन सकने की संभावना हो सकती है, किन्तु किसी का भी पार पहुँचना संभव नहीं है।

साथी अग्निहोत्री को जोश आया। उसने आगे बढ़कर कहा—“लाओ मेरी कमर में रस्सी बांधो मैं पार जाता हूँ।”

पर हम और हमारे कुली जानते थे कि यह दुस्साहस है। शायद बीस वर्ष की आयु के तूफानी जोश में अग्निहोत्री को इसका अवश्यम्भावी परिणाम न दिखाई देता हो, किन्तु हम अपने किसी भी साथी की जानबूझकर बलि देने को तैयार नहीं थे।

अन्त में जब गाइड और सब कुली ‘बस हो चुकी नमाज मुसल्ला उठाइए’ की मनोदशा में थे और वापस चलने की तैयारी कर रहे थे, तभी मनोहर ने मेरी ओर देखकर नीमा समेत समस्त कुलियों को संबोधित करते हुए कहा— अरे, तुम शेरपा होकर इस छोटी सी नदी से हार मान जाओगे ! मनुष्य यदि मन में निश्चय कर ले तो क्या नहीं कर सकता? और फिर तुम सामान्य कुली थोड़े ही हो। तुम तो सधे हुए और अनेक अभियानों के अनुभवी शेरपा हो, यदि यहीं से लौट पड़े तो दुनिया तुम्हें क्या कहेगी?

“तो फिर क्या करें?”

“करो क्या, जिस किसी तरह भी हो, पुल बनाओ। मनुष्य सब कुछ कर सकता है — तुम पुल बना सकते हो।”

“यदि पुल न बना तो?”

“बिना प्रयत्न किये न बनने की बात कहना ही बेकार है। परन्तु यदि आज दिन भर प्रयत्न करने के बाद पुल न बन सका और कल तक नदी को पार करने का कोई उपाय नहीं सूझा तो कल यहां से लौटा जा सकता है। परन्तु आज नहीं, आज तो यहीं रहकर पुल बनाना ही होगा।”

और देखा कि यह अवसरोचित पैतरा काम कर गया। गाइड और कुली जोश से उछल पड़े- “हां आज हम पुल बनायेंगे। शेरपा के नाम पर लांछन नहीं आने देंगे।”

यही ऐसा स्थान है जहां संसार का बड़े से बड़ा प्रलोभन काम नहीं आता। काम आता है केवल आत्मविश्वास। हमारे नेता ने अपनी सूझ से वही आत्मविश्वास इन हिम्मती लोगों में भर दिया।

आखिर उसी घने जंगल में वर्षा से टपकते पेड़ों के नीचे घास बिछाकर भूमि को समतल करके तम्बू गाड़ दिये गए। दोनों ‘दीदियों’ (स्त्री कुलियों) ने रसोई का प्रबन्ध सम्हाल लिया और जितने पुरुष थे वे सबके सब जी-जान से पुल बनाने में लग गये।

नदी के सबसे छोटे पाट वाले ऐसे स्थान को चुना जिसके इस पार और उस पार ऐसी बड़ी चट्टानें हो जो पुल का आधार बन सकें। वे सातों शेरपा जंगल में चले गये और अपनी खुखरियों और कुल्हाड़ी की सहायता से इतने लम्बे-लम्बे वृक्षों के तने काट गिराये जो नदी की चौड़ाई व्याप सकें, और उन्हें अपने कन्धों पर लादकर नदी के किनारे ले आये।

अब इन तनों को नदी के आर-पार कैसे रखा जाय। दोनों ओर रस्सियों से तने का सिरा बांधकर जलपृष्ठ के ऊपर इंच इंच सरकाते हुए अत्यन्त सजगता से जब कुलियों ने पहला तना नदी के उस पार चट्टान पर रख दिया तो उनकी इस बुद्धिमतापूर्ण कारीगरी को देखकर दंग रह गया और उनके उल्लासपूर्ण उच्च स्वर में मैं चिल्लाया- “अब मोर्चा जीत लिया!”

इस प्रकार वर्षा, ठण्ड, तीव्र काटने वाली हवा और बर्फानी नदी की चिंता न करते हुए मैं भी कुलियों के साथ जुटा रहा। हाथ में खुखरी और रस्सी पकड़े मैं वहीं खड़ा-खड़ा हौसला बंधाता रहा। शाम को सूर्यास्त से पहले जब मैंने तम्बू में बैठे हुए अपने तीनों साथियों को



पूरा पुल बन जाने और उस पर चढ़कर स्वयं नदी के पार जाने तथा इस प्रकार उस पुल का विधिवत उद्घाटन होने की खबर दी तो सबने एक स्वर से कहा “शाबाश! आज का दिन तुम्हारा रहा !”

## बेस कैम्प पहुंचे

प्रेक छू के बाद फिर घना जंगल है। पर यह जंगल बहुत दूर तक साथ नहीं देता। छुरोंग से आगे लगातार चढ़ाई है और 13.5 हजार फीट की ऊंचाई पर लामछो पहुंचते-पहुंचते जंगल पीछे छूट जाते हैं। फिर जोंगरी जैसा मैदान आता है। कई मील तक लगातार चलने वाला यह मैदान धीरे-धीरे ऊंचा होता जाता है और अन्त में हिमशिखरों से आने वाले हिमनदों में विलीन हो जाता है। शीतकाल में सारा का सारा मैदान एक विस्तृत हिमनद का रूप धारण कर लेता होगा, यह यहां की भुरभुरी जमीन और हिमदाह से काली पड़ी हुई चट्टानों को देखने से स्पष्ट हो जाता है।

थांगशिगं के आगे का रास्ता हिमशिखरों की छाया में चलता है। दोनों तरफ हिमनद हैं। थांगशिगं का अर्थ है लकड़ी का मैदान (थांग-मैदान, शिंग-लकड़ी)। यह आखिरी स्थान है जहां लकड़ी मिल सकती है। हिमदग्ध टूटे कहीं-कहीं चट्टानों में अड़े पड़े हैं। कुलियों ने इन टूटों की सूखी लकड़ियों को एक-एक करके बीनना शुरू किया और अपने सामान के अलावा जितना बोझ उठाया जा सकता था, उतना लकड़ियों का बोझ अपने साथ रख लिया।

## ओंगलाथंग का विशाल हिमनद

बायें हाथ को ओंगलाथंग हिमनद है। तीन ओर यह हिमशिखरों से घिरा है। अब हम हिम के इतने निकट पहुंच गये थे कि सूर्य के प्रकाश में उसकी ओर बिना ऐनक पहने देखने से आंखों में चकाचौंध लगती थी। दूरबीन से इस हिमनद की ओर जो देखा तो पता लगा कि आंख से इसका जितना हिस्सा दीखता है उससे यह कम से कम तिगुना बड़ा है। दोनों ओर के अपने स्वाभाविक तटों के बीच में एक बार गोलाकार

मोड़ लेता हुआ फिर सीधा इस प्रकार चला गया है जैसे कोई कृत्रिम विशाल नहर खुदी हुई हो और उसमें जल के स्थान पर अनन्त हिमराशि बही चली आ रही हो।

हम इस हिमनद के पार्श्व में से होकर चल रहे हैं। हवा हल्की और सूखी है। चाय पीने के बाद भी गला सूखा जा रहा है। गले को तर करने के लिए पानी पीने की इच्छा नहीं होती। सिर न जाने क्यों भन्ना सा रहा है। तीव्र वात्या<sup>6</sup> के दंश से बचने के लिए हमने गर्म कनटोप ओढ़ लिये हैं। मन में अटपटा सा लग रहा है। किसी से बात करने का उत्साह नहीं होता। कैलास और मानसरोवर की यात्रा करते हुए तिब्बत में जैसा अनुभव होता था वैसा ही अनुभव यहां भी हो रहा है। यह मैदान भी लगभग वैसा ही उजाड़, बंजर और सुनसान है। न कुछ करने को जी चाहता है, न चलने को। फिर भी चलते जाते हैं, क्योंकि यहां चलना ही धर्म है। सबकी आकृतियों पर रुखाई बरस रही है। हमारी अपेक्षा कुली अधिक प्रसन्न हैं किन्तु बात-बात पर हंसने के उनके मौजी स्वभाव में भी अब अन्तर आ गया है। हम पर ऊंचाई का असर होना शुरू हो गया है।

दूर से जिस मैदान का अन्त हमें निकट ही दृष्टिगोचर होता था, कई घंटे चलते-चलते हो गये किन्तु उसका अन्त नहीं आया। इतनी ऊंचाई पर आकर हवा के हलका हो जाने और उसमें धूलिकणों के अभाव से मैदान की अभ्यस्त आंखें धोखा खा जाती हैं और पथ की दूरी का अनुमान गलत निकलता है।

ओंगलाथंग की छाया में चलते-चलते ही 1-1.5 मील के अन्तर से दो 'माने' आये। मन में संतोष हुआ कि यहां तक तो मनुष्य के पहुंचने की निशानी मौजूद है।

फिर चढ़ाई फिर उतराई। फिर 14130 फीट की ऊंचाई पर सुन्दर झील— तीन ओर पर्वत से घिरी। इसी झील के एक किनारे से प्रेक छू नदी निकलती है जिसमें कुछ फर्लांग बाद ही ओंगलाथंग के हिमनद से निकलने वाली जलधारा मिल जाती है। इसी नदी ने छुरोंग में हमें

---

<sup>6</sup>. झंझावात

बिना पुल के पार नहीं होने दिया था। यहां इसकी पतली सी नीलाभ रजत रेखा को देखकर एक दिन पहले की इसकी उग्रता पर हंसी आई, आश्चर्य हुआ।

नक्शे में इस स्थान का नाम संगमोथंग और झील का नाम 'छो' लिखा हुआ है। पर लगता है कि झील का नाम छो नहीं है, क्योंकि इधर की भाषा में छो का अर्थ पानी है, जिस तरह छू का अर्थ नदी है। जब कई मील के बाद जलराशि को देखकर इधर के किसी व्यक्ति ने कहा होगा- 'छो' तो सर्वे विभाग के अमुक कर्मचारी ने उस झील का नाम ही छो समझ लिया और मानचित्र में वैसा ही अंकित कर दिया।

यह स्थान पड़ाव के लिए आदर्श है। पानी तो निकट है ही, कुछ मील पीछे लौटकर लकड़ी भी और बटोरकर लाई जा सकती है। इसके अलावा सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि तीन ओर पर्वतों और चौथी ओर ओंगलाथंग हिमनद की ऊंची दीवार की ओट होने के कारण यहां तीव्र वात्या से भी बचा जा सकता है।

यहीं पड़ाव क्यों न डालें? हम सबके सब थक गये हैं। कुली भी और दिनों की अपेक्षा अधिक श्रम-खिन्न हैं। किन्तु हमारे पास इस सारी यात्रा के लिए केवल एक मास का समय है। 5 सितम्बर को दिल्ली से चले थे और 5 अक्टूबर तक हमें दिल्ली वापस पहुंच जाना चाहिए। मुझे 1 मास से अधिक अवकाश मिल नहीं सकता। मेरे सब साथी भी मेरे कारण बंधे हुए हैं। उसी हिसाब से हम राशन की व्यवस्था करके चले हैं। दार्जिलिंग से चले हुए हमें 9 दिन हो चुके हैं। गेजिंग और यकसोम में हमें अपने कुलियों के लिए रसद जुटाने और उसे ढोने के निमित्त अतिरिक्त कुली करने के लिए एक-एक दिन अधिक ठहरना पड़ा। एक दिन प्रेक छू के पुल ने ले लिया। हिसाब के अनुसार हमें 20 तारीख तक 'बेस' कैम्प बना लेना चाहिए था। पर आज 21 तारीख हो गई और पड़ाव अभी दूर है। यकसोम के बाद हम प्रायः डबल पड़ाव करते आये हैं, फिर भी विलम्ब हो गया है। हिमालय दिनों का गणित नहीं चलने देता।

## बेस कैम्प की ओर

और मध्याह्नोत्तर तीन बजे के लगभग— जबकि ऐसी यात्रा में इससे पूर्व ही पड़ाव पर पहुंचकर तम्बू गाड़ देने चाहिए— हम सुंगभोथेंग से आगे चल पड़े। जितनी जल्दी 'बेस' पर पहुंच जायेंगे उतनी जल्दी दीर्घ विश्राम करने का अवसर मिलेगा— इस भावना से कुली भी थोड़ी सी प्रेरणा से आगे बढ़ने को तैयार हो गये और एक बार फिर हर्ष और उत्साहसूचक 'हो हो' का नारा लगाकर उन्होंने अपने-अपने बोझ पीठ पर लाद लिये।

झील के किनारे-किनारे एक पांव की पगडण्डी पर सम्हल-सम्हलकर पांव रखते हुए दोपहर के बाद की हवा के थपेड़ों से झील की लहरों की चंचलता देखते हुए और उन चंचल लहरों में गिरकर विलीन हो जाने के भय से अपने आपको बचाते हुए लगभग 1 मील तक हम आगे बढ़े। झील समाप्त हो गई गिरने के भय से मुक्ति मिलने के कारण मन की सजगता कुछ कम हुई और पांव निश्चिन्त होकर आगे बढ़ने लगे। पर यह आगे बढ़ना भी क्या कोई आसान बात है। कदम-कदम पर सांस फूलता है। दस बारह कदम चलने के पश्चात विश्राम के लिए ठहरना पड़ता है। कुलियों को इस बात की चिन्ता है कि कहीं पड़ाव पर पहुंचने से पहले शाम न हो जाय इसलिए वे जी तोड़कर जल्दी-जल्दी चले जा रहे हैं। पर उन्हें भी हर दस बारह कदम बाद ठहरना पड़ता है। थकान उन्हें भी कम नहीं है, शक्ति का कण-कण बटोरकर चलना पड़ता है।

## कहीं रात न हो जाए

कैलास के मार्ग में आने वाली चढ़ाई याद आ गई। कैसी जान लेवा चढ़ाई है। दृष्टि को विश्राम देने के लिए कहीं हरियाली का नाम तक नहीं है। चोटी की ओर देखते हैं तो मन में आतंक छा जाता है— हरे राम, अभी इतना और चढ़ना शेष है। और ज्यों-ज्यों चढ़ते जाते हैं त्यों-त्यों शिखर और दूर होने लगता है। आगे-आगे शेरपा कुली पीछे-पीछे हम।

थोड़ी-थोड़ी दूर पर नीमा पथ के साथ-साथ एक के ऊपर एक तीन-तीन चार-चार छोटे-छोटे पत्थर रखता जाता है ताकि हमें कुलियों

का अनुगमन करने में असुविधा न हो। ऊंचाई का सबसे अधिक असर साथी मनोहर पर हुआ है। छाती में होने वाली पीड़ा तीव्रतर है। उनके लिए आगे चल सकना दूभर है। परन्तु जिस किसी तरह से भी हो आगे तो चलना ही पड़ेगा, क्योंकि इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।

अग्निहोत्री को कुलियों के साथ किया ताकि जितनी जल्दी हो सके वह आगे पहुंचकर पड़ाव डालें और आग जलाकर गर्म चाय और खाना तैयार करवाएं। साथी रतन मनोहर के साथ पीछे रहा ताकि हौसला बंधाकर कदम-कदम आगे बढ़ने के लिए उसे प्रेरणा देता जाए। मैं स्वयं बीच में रहा कि लगातार तेजी से आगे जाते कुलियों के जाने की दिशा का ध्यान रख सकूँ और अपने पीछे आने वाले साथियों को संकेत द्वारा मार्ग का निर्देश कर सकूँ। शाम बढ़ती चली आ रही थी और यदि अन्धकार में थोड़ा सा भी रास्ता भटक गये तो मुसीबत का ठिकाना नहीं रहता।

शिखर के पास पहुंचकर देखा कि ओंगलाथंग हिमनद के तल से ऊपर चढ़ आये हैं और यहां से जल का जो विस्तृत दृश्य दिखाई देता है उससे पता लगता है कि यह दूर से जितना निर्दोष और मासूम दिखता था वास्तव में वैसा नहीं है। इसमें स्थान-स्थान पर सैकड़ों फीट गहरी दरारें पड़ी हुई हैं। पर्वत के भंगुर उपकण्ठ से चलते-चलते जब इनकी ओर दृष्टि पड़ती है तो मन भयाक्रान्त हो जाता है।

इस शिखर के दूसरी ओर मुड़ते ही देखा कि कुली आंखों से ओझल हो गये हैं और नीचे एक कटोरानुमा छोटी सी झील है। दृश्य रमणीय है किन्तु इसका एकाकीपन कितना भयंकर है ! थोड़ी देर तक किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा। कुछ और ऊपर चढ़कर जहां तक दृष्टि जा सकती थी आंखें फाड़-फाड़कर देखा। कुछ दिखाई नहीं दिया। दसेक कदम और ऊपर चढ़कर फिर देखा— धीरे-धीरे अन्धकार के आवरण को अपनाते चारों ओर के हिम शिखरों के सिवा और कुछ दिखाई नहीं दिया। हमारे कुली किधर गये? नीचे झील है ऊपर अनन्त हिम-लोक। वे कहां विलीन हो गये?

निराश होकर नीचे उतरा। फिर चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। अचानक देखा कि झील के पार के मैदान में दो आदमी भागते दिखाई दिये। हो

न हो, ये हमारे ही कुली हैं जो अन्धकार से पहले पड़ाव पर पहुंचने की जल्दी में भागते चले जा रहे हैं। दिशा मालूम हो गई। इस दिशा का पथ तो झील के बायें किनारे होना चाहिए। मन से यह निश्चय कर मैंने अपने पीछे आने वाले साथियों को देखा, वे काफी पीछे थे, दिखाई नहीं दिये। उनके बिना अपने आप आगे बढ़ने का प्रयत्न करना बेकार था।

कुछ कदम नीचे उतरकर झील के बायें होते हुए हम लगभग समतल मैदान में पहुंच गये। संध्या अनेक छोटी-छोटी धाराओं में शतधा होकर फैल गई है। सूरज डूब रहा है। कुछ क्षणों के बाद ही सारा प्रदेश अन्धकार मग्न होने वाला है। नदी की रेत में अपने आदमियों के पद चिन्हों को खोजते हुए हम धीरे-धीरे बढ़े जा रहे थे पर अन्धकार के कारण परेशानी अनुभव कर रहे थे।

एक बड़ी चट्टान के ऊपर 5-6 पत्थरों को ऊपर-नीचे रखकर नीमा (हमारा गाइड) रोशनी लिये खड़ा है ताकि हम दूर से पड़ाव की ओर उस तक पहुंचने के पथ को पहचान सकें।

यह चेमाथंग है। यही है हमारा बेस कैम्प जहां से पण्डिम के शिखर पर आरोहण का प्रयत्न करेंगे। इसकी ऊंचाई 15.5 हजार फीट है। दार्जिलिंग से 72 मील दूर अपनी यात्रा के 10वें दिन हम यहां आ सके हैं।

दिन में इस स्थान का तापमान शून्य या उससे एकाध अंश ऊपर रहता है, किन्तु रात्रि को यन्त्र में पारा भी 10 अंश और नीचे तक गिर जाता है।

आज की मंजिल बहुत कठिन रही। रात को थकान से चूर होकर तम्बुओं में घुसकर हम तो सो गये किन्तु ऊपर के हिमशिखर और हिमदेव जागते रहे।

## पथ की खोज में

22 सितम्बर को प्रातः उठकर हमने देखा कि तम्बू के ऊपर बर्फ की हल्की सी परत जमी हुई है। सामने का विस्तृत भू-भाग रात को गिरी

हुई ओस के जम जाने से श्वेत हो गया था। तम्बू के बाहर बर्तन में जो पानी भरा हुआ था वह भी जम गया था।

ठण्ड के कारण हम चारों को रात के समय अच्छी तरह नींद नहीं आई। छाती और सिर में हल्का-हल्का दर्द रात भर होता रहा। आधी रात के करीब बड़े जोर की प्यास लगी, गला सूखने लगा और सांस लेने में कष्ट होने लगा। ठण्ड की अधिकता से जब रात के मध्य प्रहर में वायु की नमी ओस बनकर पृथ्वी पर जम गई तो आर्द्रता शून्य शुष्क वायु को खींचने से कष्ट होना स्वाभाविक था। शून्यांश से 10 अंश नीचे शीत का जो अर्थ समुद्र की सतह पर या दिल्ली जैसे बड़े शहर के सुन्दर पक्के मकान में बैठकर खिड़की से देखने में हो सकता है वही अर्थ यहां इस छोटे से तम्बू में नहीं है। बड़ी-बड़ी चट्टानों की आड़ में शिविर होने पर भी प्रभंजन<sup>7</sup> के थपेड़ों से बचाव नहीं है। कभी-कभी जब हवा का झोंका अन्दर जा जाता है तो ठिठुरन मांस मज्जा को चीरकर हड्डी तक पहुंच जाती है।

सिर और छाती का दर्द तथा गला सूखने आदि का कष्ट ऊंचाई के कारण होता है। इन कष्टों को धैर्यपूर्वक सहने के सिवा और कोई चारा नहीं होता। अतः हमने सोचा कि धीरे-धीरे हम इसके अभ्यस्त हो जायेंगे। और अगले दो दिनों में हमारी इस धारणा की पुष्टि भी हो गई। प्रत्येक अगली रात्रि को कष्ट कम होता गया और तीसरे दिन मैंने अपने आपको पूर्णतः स्वस्थ तथा प्रसन्न पाया। साथी रतन और अग्निहोत्री का भी यही हाल रहा। किन्तु भाई मनोहर का स्वास्थ्य लगातार गिरता गया। उनको ज्वर रहने लगा और कुछ खाने की रुचि न होने से दुर्बलता बढ़ती गई।

22 तारीख को दिन भर विश्राम करने का विचार था; किन्तु हमारे पास समय इतना कम था कि थके होने पर भी हम पडिण्म शिखर के आरोहण पथ का निश्चय करने के लिए तुरन्त निकल पड़े। हमारे तीनों ओर गल थे (ग्लेशियर को गढ़वाल और कुमायूं में 'गल' ही कहा जाता है; हिन्दी में हिमनद शब्द का प्रयोग होता है

---

<sup>7</sup> चक्रवात, बवण्डर

किंतु वह बिल्कुल सही शब्द नहीं है इसलिए हम गल ही का प्रयोग करेंगे। इन गलों के ऊपर से होकर शिखर तक जाना सम्भव है या नहीं, और यदि सम्भव है तो उसके लिए सुगम पथ कौन सा हो सकता है। यह जांचने के लिए गल की ओर तो साथी अग्निहोत्री गये और बाकी दो की ओर मैं और रतन गये। मनोहर भाई अस्वस्थता के कारण तम्बू में ही रहे और चलने से पूर्व दल के नेता की हैसियत से उन्होंने हमें ताकीद कर दी कि हम कहीं भी आवश्यकता से अधिक संकट में अपने आपको न डालें और यथासम्भव दोपहर तक कैम्प वापस पहुंच जायें।

## पथ की खोज

चाय पीकर हमने दो-दो जुराबों के ऊपर फौजी जूते पहने। फिर पांवों पर गरम पट्टी बांधी, गरम पजामा और गरम बनियान पहना, उसके ऊपर से गरम और जलवायु-सिद्ध अमरीकी जाकेट डाल ली। सिर पर हमने कानों तक को ढकने वाला गरम टोप पहना, हिम की चौंध से बचने के लिए आंखों पर ऐनक लगाई और हाथों में हिमकुठार (आइस-एक्स) लेकर हम अपनी-अपनी दिशा की ओर चल दिये। कुलियों में से किसी को हमने साथ नहीं लिया। आज के दिन उन्हें विश्राम करने देना जरूरी था, क्योंकि कल के परिश्रम से वे भी बहुत थक गये थे।

मैं और रतन सामने की पहाड़ी पर चढ़े। वह बहुत ऊंची नहीं थी किन्तु उसके ऊपर चढ़कर दोनों ओर के गल नीचे से ऊपर तक बिल्कुल स्पष्ट दिखाई देते थे। हमने दायें हाथ की ओर देखा। सूर्य की धूप में चमकते और आंखों में चकाचौंध पैदा करते हुए हिम का कैसा विराट दृश्य था ! बिना इस दृश्य को देखे इसकी विराटता का अनुमान नहीं किया जा सकता।

गल में स्थान-स्थान पर सैकड़ों फीट गहरे गड्ढे, कोटर, खोह और दरारें बनी हुई थीं। धूप की गर्मी से जब ऊपर की बर्फ पिघलती थी तो दरार के किनारे हिम के नाम मात्र सहारे पर खड़े हुए पत्थर



धड़ाम-धड़ाम सैकड़ों फीट नीचे गिरते थे। जब कोई बड़ी चट्टान गिरती थी तो कभी-कभी तोप के छूटने का सा भयंकर शब्द होता था। जब कोई पत्थर किसी खोह में गिरता तो जैसे कुएं में पत्थर गिरने से 'गुम्म' की ध्वनि होती है, यहां भी वैसी ही ध्वनि होती है और उसकी प्रतिध्वनि आकाश में विलीन हो जाती है। परन्तु गल का ऊपरी भाग बहुत कुछ सपाट जैसा लगता था। दूरबीन से देखने पर वहां भी हिम के बड़े-बड़े लोंदे नजर आये। किन्तु हमने अनुमान लगाया कि जिस पहाड़ी पर चढ़कर हम देख रहे थे उसकी समाप्ति के एक सिरे से निकलकर हम उस गल पर लगभग 200 गज तक ऊपर जा सकते थे, उसके आगे नहीं।

उधर से निराश होकर हमने बायें हाथ के गल की ओर नजर दौड़ाई। उस पर बर्फ की तह बीच में इतनी मोटी थी कि ऊंट के गुम्ब जैसी लगती थी और उसका ढलान भी इतना सीधा था कि उस पर चढ़ने की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

दोपहर को कैम्प में पहुंचने पर अग्निहोत्री ने जो विवरण दिया वह भी बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं था।

हमने देखा कि पण्डिम के शिखर पर सामने से आक्रमण नहीं किया जा सकता। अब केवल एक ही उपाय और शेष था— उसके पीछे की ओर जाकर देखा जाये, शायद कोई रास्ता निकल आये।

## पीछे से आक्रमण का प्रयत्न

23 को प्रातः 6 बजे हम तीनों गोचा ला की ओर चले। आज नीमा और पेम्बा रव साथ थे।

लगभग आधा मील बाद ही चेमाथंग का छोटा सा मैदान समाप्त हो गया। फिर चढ़ाई आई— कदम-कदम पर हंफा देने वाली चढ़ाई। चढ़ते-चढ़ते जब हम पहाड़ी के ऊपर आ गये तो बायें हाथ को दिखाई दी एक सुन्दर झील जिसके ऊपर का अधिकांश भाग जमा हुआ था। एक गल इस झील में ही आकर गिरता था। उस भयंकर रमणीयता के साथ ही हिमालय के अदृश्य आकर्षण का यहीं आकर पता लगता

है। शिखर अबाध वेग से अपनी ओर खींचता है। और जब मानव सम्मोहनावस्था में आगे बढ़ता है तो पृथ्वी की समस्त ठोस सृष्टि का प्रतीक वह महान हिमालय उसे थप्पड़ मारकर पीछे हटा देता है। जितना तीव्र आकर्षण है उसका उतना ही तीव्र विकर्षण है। यदि कोई दुस्साहसी व्यक्ति हिम के प्रहार से आहत होकर भी आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है तो यह हिमालय उसकी शक्ति का अणु-अणु खींचकर पराभूत करने का प्रयत्न करता है। फिर भी जो साहस न खोए और उस मानसिक आकर्षण का बड़े से बड़ा मूल्य चुकाता जाए उसी महाप्राण मानव को हिमालय अपने शिखर पर चढ़ने देता है। हिमालय के शिखर के सिंहासन पर चरण रखने वाले व्यक्ति से बढ़कर सौभाग्यशाली पुरुष और कौन होगा? हमें यह सौभाग्य नहीं मिलना था।

## निराशा

धूप की गरमी से सिर और शरीर में सनसनाहट हो रही थी। बर्फ के सतत सामीप्य से जूतों के अन्दर पैर ठिठुर रहे थे और इतना कठिन परिश्रम करने के कारण प्यास से गला सूख रहा था। तीव्र धूप होने पर भी बर्फ पिघल कर कहीं पानी बनता नजर नहीं आता था। इतनी ऊंचाई पर आकर बर्फ गरमी पाकर सीधी वाष्प बन जाती है, इस लिए पानी की आशा भी बेकार थी। प्यास से तंग आकर मैंने हाथों से बर्फ कुरेदकर खाना शुरू किया। अग्निहोत्री भी मेरा अनुकरण करने लगा। इस पर कुलियों ने कहा— “अधिक बर्फ खाना ठीक नहीं इससे और प्यास लगेगी। और तब हमने अपने हाथ खींच लिए।”

अभी हम पूरी तरह सुस्ता भी नहीं पाए थे कि आसपास बादल छा गये। फिर धीरे-धीरे तुषारापात शुरू हो गया, साथ ही हमारे मनों में भी निराशा छा गई। सोचा था कि विश्राम करने के पश्चात फिर प्रयत्न करके देखेंगे कि किसी ओर से दरारों और नरम हिम से बचकर आगे बढ़ने का उपाय है या नहीं। आधे घण्टे तक वहीं बैठे-बैठे हम बादलों के छँटने और तुषारापात बंद होने की प्रतीक्षा करते रहे। देखा कि मध्याह्न का 1 बज गया है और सूर्यास्त से पूर्व अपने पड़ाव पर पहुंचने के लिए अब हमें लौटना चाहिए।

यन्त्र से ऊंचाई देखी तो 18,500 फीट थी। हम यहां से लौट पड़े। लौटने से पहले अग्निहोत्री ने उस स्थान पर जिस पर हम बैठे थे एक लकड़ी में तिरंगी झंडी लगा दी और तब अनायास ही हमारे मुख से निकल पड़ा— “भारत माता की जय।”

हम जानते थे कि जिस ऊंचाई तक हम पहुंचे थे वह कोई बहुत महत्वपूर्ण नहीं थी और अभी शिखर हमसे लगभग 3.5 हजार फीट और ऊंचा था। इस हिम के अनन्त साम्राज्य में हमारा गाड़ा हुआ झंडा बहुत देर टिकने वाला नहीं था। फिर उसके गाड़ने का अर्थ? 18,500 फीट की ऊंचाई पर गड़ा हुआ झंडा हमारी विजय का नहीं हमारी पराजय का सूचक था। जितने साधन और समय हमें उपलब्ध थे उतने में हम इससे आगे नहीं जा सके। हमारे लिए इससे अधिक सम्भव नहीं था। इतने ही साधन और समय के अन्दर ऐसे मौसम में किसी और के लिए इससे अधिक सम्भव होता, इसमें सन्देह है। यूरोप के सर्वोच्च शिखर ‘माउण्ट ब्लांक’ से हम 4.5 हजार फीट ऊंचे पहुंच गए थे। अभियानों के वीरतापूर्ण इतिहास में हमारी उपलिब्ध नगण्य भले ही हो, किन्तु भारतीय युवकों के प्रथम प्रयास के रूप में इसका अपना स्थान है।

हिमालय के सामने मनुष्य की हार! पृथ्वी के मानदण्ड की तरह गर्वोन्नत मस्तक लिए खड़े इस महान हिमालय पर मानव आज तक विजय कहां प्राप्त कर सका? इसकी सर्वोच्च चोटियां तो मनुष्य के चरण से अस्पृष्ट हैं ही, अपेक्षाकृत कम ऊंची चोटियां भी आज तक सृष्टि के आदि से ज्यों की त्यों अस्पृष्ट हैं। 28 हजार फीट से ऊंची तीन सर्वोच्च चोटियां तो अनवरत प्रयत्न के बाद भी अजेय हैं। 27 हजार फीट से अधिक ऊंची 14 चोटियों में से अभी तक केवल एक अन्नपूर्णा— सो भी इसी वर्ष की गर्मियों में सर की जा सकी है। हिमालय की 76 चोटियां 24 हजार फीट से अधिक ऊंची हैं और आज तक उनमें से केवल दो— नन्दादेवी और कामेत तक ही मनुष्य पहुंच सका है। इस महान नगाधिराज से हार तो स्वाभाविक है। हमें केवल इसी बात का सन्तोष है कि अब तक अधिकतर यूरोपवासियों ने ही हिमालय के साथ मानव जाति के संघर्ष का अधिकांश बोझ उठाया था, किन्तु अब हम भारतीय युवक भी इसमें शामिल हो गये थे।

हिमालय 'हमारा' है तो इस संघर्ष का सबसे अधिक बोझ हमें ही उठाना चाहिए।

हे पडिष्म की देवी! तुम्हारे मस्तक के दर्शन का सौभाग्य हमें नहीं मिला किन्तु तुम्हारे हिम-शुभ्र दिव्य प्रासाद में पांव रखने की धृष्टता हमने अवश्य की है।

**नसीब न हो सकी दौलते कदम-बोसी;  
अदब से चूम के हजरत का आस्ताना चले।**

## वापसी

लौटने की कहानी बड़ी नहीं है।

25 सितम्बर की प्रातः जब हम चेमाथंग से चले तो हमारे सामने केवल एक ही समस्या थी; साथी मनोहर को कैसे वापिस पहुंचाया जाए? पिछले 5 दिन से वह बीमार थे और इतने समय तक लगातार कुछ भी न खा सकने के कारण अत्यन्त दुर्बल हो गये थे। जितने हमारे कुली थे वे सबके सब अपने-अपने बोझ के साथ बंधे हुए थे। अतिरिक्त कुली यकसोम से पहले मिलने सम्भव नहीं थे क्योंकि उससे इधर बस्ती नहीं है। परन्तु पेम्बा नरम नरबु और कुसांगकेशी ने जिस हौसले से इस समस्या को हल किया वह उन्हीं के लिए संभव था। वे दोनों पहले अन्य कुलियों से आगे जाकर सूंगमोथेंग के घाट के शिखर पर अपने बोझ पहुंचा आए और फिर अपने-अपने हिम-कुठार लेकर वापिस आ गए। उनका हिम-कुठार किस प्रकार सर्वार्थसाधक है यह तभी विदित हुआ। जो कुठार तम्बू गाड़ने, जमीन खोदने, बर्फ पर चलने आदि नानाविध कार्यों में उपयोगी है उसी के दोनों ओर रस्सी बांधकर और बीच के भाग में गद्दी बिछाकर उन्होंने साथी मनोहर को पीठ पर उठा लिया और पारी-पारी से उस जानलेवा चढ़ाई पर उनको ले गए। जब पौने दो मन वजन को पीठ पर लाद कर पेम्बा नरबू कदम-कदम पर हंफा देने वाली वात्या का सामना करते हुए अपने साथियों के साथ मिल गया तो उसकी शक्ति पर हम सभी को आश्चर्य हुआ।

मैंने मनोहर से कहा— “मैं तो मरने से पहले बच्चे के नाम वसीयत कर जाऊंगा कि यदि तुझे कभी हिमालय के किसी शिखर के अभियान के लिए आना हो तो साथ शेरपा को लाना न भूलना।”

उस शाम ऑगलाथंग गल के निकट ही पड़ाव। सूर्यास्त के पश्चात जब ऐन पण्डिम के शिखर के ऊपर चन्द्रोदय हुआ तो ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे हिमदेवी के सिर पर रजत कलश रखा हो। कैमरा लेकर तम्बू से बाहर निकलते-निकलते यह देव-दुर्लभ दृश्य आंखों से ओझल हो गया और हम ठगे के ठगे रह गए। रात को जब सारा मैदान चन्द्रिका आप्लावित हो उठा और प्रेक छू की धारा के ऊपर अर्द्धवृत्ताकार इन्द्रधनुष निकल आया तो चांदनी में इन्द्रधनुष निकलने की अद्भुत घटना को देखकर और सामने के हिमशिखरों से बहती विशाल दुग्ध धारा को देखकर मन में अपने अपूर्ण स्वप्न के लिए और भी क्षोभ हुआ।

फिर छुरोंग और जोंगरी आए। हिमशिखर धीरे-धीरे हमसे दूर होते चले गए। मेनलापचा में इन हिमशिखरों को हसरत भरी निगाह से देखते हुए हमने पण्डिम की अधिष्ठात्री देवी को अन्तिम नमस्कार किया और फिर घने जंगल में उतर आए। फिर शाचिंग का जंगल। फिर यकसोम; फिर लामा का प्रेमपूर्ण आतिथ्य। बस्ती में पहुंचने की खुशी में हमारे कुलियों ने शराब पीकर रात भर नृत्य गान कर मस्ती की। मडिंग पहुंच कर जब सबने सर्दी के कारण हमारे फटे हुए होंठ, फटी हुई नाक फटे हुए गाल और बड़ी हुई दाढ़ी की ओर बार-बार इशारा शुरू किया तब ध्यान आया कि पिछले 15 दिन हम दुनिया से बाहर किसी और लोक में रह रहे थे।

दार्जिलिंग तक पहुंचते-पहुंचते तो हमें अपनी सर्दी का भेष भी अखरने लगा। पूरे बाईस दिन के बाद चार अक्टूबर को वापस दार्जिलिंग पहुंचे और जब हमने मोटर रिक्शा, आलीशान होटल और बंगले, लोगों की भीड़, बाजारों की चहल पहल देखी, तो लगा कि फिर इस दुनिया में आ गये हैं।

नीमा गाइड— सदा प्रसन्नमुख, अत्यन्त साहसी, समय और अवसर के योग्य सूझवाला; पेम्बा नरबू— अत्यन्त शांत स्वभाव किन्तु शक्ति और अनुभव का भंडार, कुसांगकेशी— सुन्दर नवयुवक, अक्खड़ किन्तु

उत्साही; सिंगमा नरबू— गठा हुआ शरीर और अपने वार्तालाप तथा हावभाव से सबको हंसाने वाला; अजीबा— गोल सिर, गोल माथा, गोल आंख, गोल ठोड़ी, गोल मुंह— बेचारा गरीब छोकरा; रेडा और दीका— दोनों दीदियां सदा खिलखिलाने वाली निरालस्य अत्यन्त उत्साही और पड़ाव पर सबसे पहले पहुंचकर गरम भोजन और गरम चाय की व्यवस्था करने वाली। ये कुली क्या थे— हमारे 22 दिन के सुख-दुख के अभिन्न साथी थे। पिछले तीन सप्ताहों के हमारे जीवन के एक क्षण की भी इनके बिना कल्पना नहीं की जा सकती। ये ही लोग थे जो बस्ती से शून्य प्रदेश में लगातार 22 दिन तक हमारे परम आत्मीय बनकर रहे— 15 हजार फीट से अधिक ऊंचाई के वातावरण की नीरसता में जिन्होंने हमारे जीवन को नीरस और एकाकी नहीं होने दिया। इतने समय तक जो हमारे पहरेदार, संरक्षक, सहयोगी और जीवन-मरण के साथी बन कर रहे, ऐसा क्षण भी आया जिसके बाद वे हमारे कुछ नहीं रहे। वह क्षण कितना दुखदायी था।

इन कुलियों के विदा होते ही यात्रा का शेष भाग भी हमसे विदा हो गया, हम हिमलोक के जंगली यात्री नहीं रहे, फिर सभ्य नागरिक बन गए। रह गई केवल हिमलोक की स्मृति— अमिट, अक्षुण्ण, जीवनव्यापी।







क्षितीश वेदालंकार

## पण्डित के दुर्गम पथ पर

क्या कभी जीवन में हिमालय के दर्शन का अवसर मिला है? नहीं! तो वह अभागा है।

यदि हिमालय के दर्शन का सौभाग्य एक बार भी प्राप्त किया है तो क्या पुनः उसके दर्शन की उत्कण्ठा मन में नहीं हुई? यदि सचमुच ही नहीं हुई तो समझना चाहिए कि उस मनुष्य की रसबोध की वृत्ति समाप्त हो गई। प्रकृति में कितना रस है इसका सम्यक् ज्ञान हिमालय के अंक को छोड़कर और कहां हो सकता है। हिमालय तो रसों का जन्मदाता है कितने सरस सलिल स्रोत और स्रोतस्विनियां उसके अंक में क्रीड़ा करते हैं।

जब भी कभी हिमालय के दर्शन का अवसर मिला है तभी उसकी कुछ ऐसी मोहिनी शक्ति का जादू मेरे ऊपर छा गया है कि पुनः पुनः उसके दर्शन की अभिलाषा मन में जाग उठती है। सोते-जागते, उठते-बैठते उसी के वन, पर्वत, नदी और नाले दिमाग में चक्कर काटते रहते हैं।

इस बार जब कांचन श्रृंग-श्रृंखला स्थित पण्डित हिल के अभियान की पत्रों में चर्चा चली तो फिर प्रसुप्त उमंग जाग उठी और न जाने किस अदृश्य शक्ति से खिंचा हुआ मैं अभियान दल में सम्मिलित हो गया।